



क्षमा के स्वर

मुनिचन्द्रप्रभासागर

क्षमा के स्वर

लेखक

मुनि चन्द्रप्रभ सागर

प्रकाशक

जैन श्वेताम्बर श्री संघ,
४, मीर बोहर घाट स्ट्रीट,
कलकत्ता—७

पर्युषण पर्व के पुण्य अवसर पर जैन श्वेताम्बर श्री संघ, कलकत्ता एवं श्री प्रकाशकुमार, अशोककुमार, सिद्धीराज दफ्तरी, कलकत्ता के शतप्रतिशत अनुदान से प्रकाशित तथा निःशुल्क वितरित ।

आशीर्वाद :

गुरुदेव आचार्य श्री जिनकान्ति सागर सूरीश्वर जी म०

प्रेरणा-सूत्र :

मुनिराज श्री महिमाप्रभ सागर जी म०,

मुनि श्री ललितप्रभ सागर जी

सम्पादन :

डॉ० सागरमल जैन

निदेशक, पा० वि० शोध संस्थान, वाराणसी

प्रथम संस्करण : अगस्त, १९८४

१,१००

मुद्रक :

डिवाईन प्रिन्टर्स,

सोनारपुरा, वाराणसी-१

प्रस्तावना

मुनि श्री चन्द्रप्रभसागर विरचित 'क्षमा के स्वर' नामक ग्रन्थ आपाततः आद्योपान्त देखा। लघुकाय होते हुए भी ग्रन्थ विचार एवं भाषा की दृष्टि से समृद्ध है। ग्रन्थकार ने भारतीय संस्कृति की जैन, हिन्दू और बौद्ध तीनों धाराओं के प्रामाणिक ग्रन्थों को आधार बना कर क्षमा के लक्षण, भेद एवं स्वरूप का विवेचन किया है। विद्वान् लेखक ने विषय को स्पष्ट करने के लिए अनेक दृष्टान्तों का उद्धरण दिया है तथा अनेक आधुनिक प्रश्न उपस्थित कर उनका समुचित समाधान प्रस्तुत किया है। शास्त्रीय विषय होने पर भी भाषा जनसाधारण के लिए सर्वथा बोधगम्य है। पर्युषण पर्व की वेला में श्रद्धालु जिज्ञासुओं में निःशुल्क वितरित करने के लिए विरचित यह ग्रन्थ निश्चय ही लोकोपकारक होगा, ऐसी हमारी धारणा है।

मनुष्य के भीतर रहने वाले राग, द्वेष, मोह आदि क्लेश ही उसके महान् शत्रु हैं। इनके ऊपर विजय प्राप्त करना ही वास्तविक विजय है। भगवान् महावीर, बुद्ध आदि प्राचीन मुनियों, ऋषियों ने इनके ऊपर विजय के ही अनुभूत उपाय बतलाए हैं। जगत् में व्याप्त दैन्य, शोषण, उत्पीडन, युद्ध, अशान्ति, भय आदि विविध दुःख इन क्लेशों के ही ब्राह्म प्रक्षेपण हैं। इनके ही परिणाम हैं। यह कोई सैद्धान्तिक बात ही नहीं है, अपितु गहराई के साथ चिन्तन करने से यह

तथ्य स्पष्ट होने लगता है। जब तक मनुष्य में आन्तरिक परिवर्तन नहीं होता, विश्व की वर्तमान दुर्दशा में कोई परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। यदि व्यक्ति राग, द्वेषादि से समान रूप से पीड़ित है तो पुराने शासकों के स्थान पर नए शासक बैठा देने से या व्यवस्था में परिवर्तन कर देने से वास्तविक क्रान्ति घटित नहीं होती। बड़ी-बड़ी क्रान्तियों की विफलता का भी कारण यही रहा है। अतः व्यक्ति में आन्तरिक परिवर्तन महत्त्वपूर्ण है।

क्षमा द्वेष का प्रतिपक्ष (विरोधी) है। युद्ध, कलह आदि उपद्रवों का कारण द्वेष, क्रोध आदि ही हैं। क्षमा के अभ्यास से इनका अपशम होता है। क्षान्ति, सहिष्णुता, मर्षण आदि इसके पर्याय हैं। आपतित दुःख, चाहे वह प्राकृतिक हो या व्याधिजन्य हो, उससे चित्तक्षोभ न होना, दूसरे द्वारा किये अपकार से उद्विग्न न होना, क्षमा है। वस्तुओं के स्वभाव पर, उनके परस्पर कार्यकारण भाव पर विचार करने से इस प्रकार की क्षान्ति का उत्पाद सम्भव है। उत्पन्न होने पर उसको चित्त में स्थिर करने के लिए अभ्यास करना चाहिए।

मुनि चन्द्रप्रभसागर जी अभी युवा हैं। तेजस्वी और प्रतिभावान् हैं। इस क्षेत्र में उनसे बहुत आशाएँ हैं। हम उनकी उत्तरोत्तर अभ्युन्नति की आकांक्षा करते हैं। आचार्य शान्तिदेव के निम्न वचन से हम अपना वक्तव्य समाप्त करते हैं—

न च द्वेषसमं पापं न च क्षान्तिसमं तपः ।

तस्मात् क्षान्तिं प्रयत्नेन भावयेद् विविधैर्नयैः ॥

(बोधिचर्यावतार, ६ / २)

भवतु सर्वमंगलम्

रामशंकर त्रिपाठी

१९ अगस्त, श्रीकृष्णजन्माष्टमी १९८४

अध्यक्ष,

श्रमण विद्यासंकाय एवं बौद्धदर्शन विभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

क्षमा के स्वर

नैतिक साधना का अमृत : क्षमा

सकल धर्म-दर्शन का प्रस्थान बिन्दु समभाव है। समभाव ही साधना का सार तत्त्व है। क्षमा में समभाव का निवास है। क्षमा ही समभाव की अभिव्यक्ति है। समभाव तथा क्षमा में गहरा सम्बन्ध है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, एक के बिना दूसरा अपूर्ण है। इनकी प्राप्ति के लिए प्रयास करना ही जीवन या साधना का सार है। सत्यतः हमारे आचार-विचार का केन्द्रबिन्दु समभाव तथा क्षमा की उपलब्धि है। इसके समक्ष समस्त ऐश्वर्य व्यर्थ हैं। चाहे गार्हस्थ्य-मूलक स्थिति हो या श्रामण्यमूलक स्थिति, अन्तरात्मा में लगातार क्षमा एवं समता की अभिवृद्धि ही श्रेयस्कर मान्य है। गृहस्थ यदि इन दोनों से च्युत है, तो वह अपने जीवन के अमृतत्व से च्युत है। साधक यदि इनसे वञ्चित है, तो वह अपनी साधना के फल से वञ्चित है। इनके अभाव में उसकी साधना बाधित हो जाएगी।

वस्तुतः चैतसिक जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्ति यही है कि वह बाहरी एवं आन्तरिक उद्वेगों, उत्तेजनाओं तथा संवेदनाओं से उत्पन्न तनाव का अन्त कर समभाव या समता की स्थापना करे। समता की स्थापना से चेतना की ऊर्जाओं का केन्द्रीयकरण होता है ; फलस्वरूप चित्त-शान्ति की प्राप्ति होती है। क्षमाशील व्यवहार का लक्ष्य पूर्ण शान्ति की प्राप्ति है। समता से वीतरागता की प्राप्ति होती है। वीतरागता से मनुष्य परम पद को प्राप्त करता है। इस प्रकार वीतरागता की साधना का मूल क्षमा है। यही मोक्षमार्ग की आधारशिला है। इसी के आलोक में मनुष्य अपनी निर्वाण-यात्रा पूर्ण करता है। शास्त्र में एक प्रसंग है, जो कि इस प्रकार है—

गुरु ने शिष्य से कहा, “हमें स्वयं को उपशमभाव रखना चाहिये और दूसरों को भी उपशान्त रखना चाहिये। जो उपशान्त या क्षमावन्त है, उसकी ही आराधना (साधना) सफल है, जो उपशान्त या क्षमावन्त नहीं है, उसकी आराधना व्यर्थ हो जाती है।”

शिष्य ने पूछा, “भन्ते ! ऐसा किसलिए ?”

गुरु ने प्रत्युत्तर दिया, “उपशम या क्षमा श्रामण्य जीवन अर्थात् साधना का सार है।”^१

अतएव यह बात साफ है कि साधना की जड़ क्षमा है। साधना की दृष्टि से क्षमावान् पुरुष तीन प्रकार के कह सकते हैं—१. क्षमावादी—जो क्षमा को सिद्धान्त-रूप में स्वीकार करता है; अपनाता नहीं, २. क्षमाधारी—जो क्षमा धारण करता है अर्थात् व्यवहार में उसे अपनाता है और ३. क्षमामय—जिसका जीवन क्षमा से परिपूर्ण है अर्थात् जिसका क्षमा ही सर्वस्व है। मनुष्य क्रमशः इनका साधक बनता है। क्षमामय की स्थिति क्षमा की चरम परिणति है। यह क्षमामय स्थिति व्यक्ति को वीतराग-दशा तक पहुँचा देती है। निष्कर्ष यही है कि क्षमा समता की नींव है। क्षमा के बिना समता का महल निर्मित नहीं हो सकता।

अब यहाँ पर हम साधना के राजमार्ग—क्षमा का विश्लेषण / विवेचन करेंगे।

क्षमा का व्यौत्पत्तिक अर्थ और अर्थविस्तार :

क्षमा शब्द की व्युत्पत्ति ‘क्षम्’ धातु से होती है। ‘क्षम्’ धातु में ‘अङ्’ प्रत्यय जोड़ने पर ‘क्षम’ शब्द बनता है। स्त्रीलिंग में इसी क्षम शब्द से ‘टाप्’ प्रत्यय संलग्न करने पर ‘क्षमा’ शब्द बनता है, जो सहनशीलता का वाचक है।

क्षमा शब्द मूलतः सहन शक्ति का ही वाचक है, किन्तु प्रयोग के आधार पर इसके मौलिक अर्थ में कुछ परिवर्द्धन भी दिखाई पड़ता है। जैसे कोई अपराधी प्रार्थना करते हुए जब यह कहता है कि ‘कृपया क्षमा कर दीजिये’ तो यहाँ इस कथन में भूल या अपराध होने पर उसे स्वीकार करते हुए यह प्रार्थना करना कि भविष्य में ऐसा काम नहीं करेंगे, इस वार हमें दयापूर्वक छोड़ दीजिये। यह क्षमा शब्द का अर्थ-विस्तार है। क्षमाशील तितिक्षु होता है। वह दूसरों द्वारा पहुँचाए हुए कष्टों को चुपचाप सहन करता है। प्रतिकार का इसमें कोई स्थान नहीं होता।

क्षमा आत्मा का धर्म है। अतः इसका सम्बन्ध सीधे आत्मा से ही है। आत्मिक क्षमा का तात्पर्य कष्ट और पीड़ा देने वाले के प्रति

१. कल्पसूत्र, समाचारी तृतीय वाचना, सूत्र ५९.

किसी प्रकार का आक्रोश या द्वेष न रखकर उसे सहन करना, जबकि व्यावहारिक क्षमा का अर्थ है—अपराधों के प्रति भी मधुर व्यवहार करना। क्षमा में मन, वचन और काया—तीनों का संगम है। अतः वह मानसिक, वाचिक, और कायिक तीनों प्रकार की हो सकती है।

तितिक्षा, सहिष्णुता, बरदाश्त, सहनशीलता, गमखोरी आदि क्षमा के पर्यायवाची हैं। उपशम, अक्रोध आदि के रूप में भी क्षमा शब्द प्रयुक्त हुआ है। इससे इसके अर्थ-विस्तार में और बढ़ोत्तरी हुई है। परन्तु उपशम, अक्रोध एवं क्षमा को शास्त्रीय दृष्टि से समीक्षित करें तो इनमें परस्पर अन्तर भी पाते हैं। यह अन्तर संक्षेप में इस प्रकार है—

क्षमा और उपशम :

उपशम शब्द में 'उप' उपसर्ग है, जो 'शम' के साथ प्रयुक्त होकर उसके अर्थ को विशेषता प्रदान करता है। 'शम' शब्द 'शम्' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है—'शान्ति'। अतः इस अर्थ में हम क्षमा और उपशम—दोनों को एकार्थक मानते हैं। लेकिन उपशम शब्द शांति का द्योतक होते हुए भी क्षमा से भिन्न अर्थ रखता है। उपशम में इन्द्रियों या मनोविकारों को उपशमित किया जाता है। उन्हें वश में किया जाता है, दबाया या घटाया जाता है।

सामान्य कोटि की क्षमा उपशम के लिए आवश्यक है। किन्तु उच्च कोटि की क्षमा उपशम के बाद ही सम्भव है। मन के विकारों से ग्रस्त व्यक्ति की क्षमा कथमपि उत्तम नहीं हो सकती। महाभारत में युधिष्ठिर को परम क्षमाशील कहा गया है, क्योंकि उनका चित्त शान्त था। उन्हें लोग हर तरह से बुरा-भला कहते, उन पर आक्षेप तथा आघात करते, किन्तु युधिष्ठिर उपशमित होने के कारण उसका प्रतिकार नहीं करते थे। अतः क्षमा की साधना के लिए उपशम प्रथम सोपान है।

क्षमा और अक्रोध :

उपशम की भांति अक्रोध भी क्षमा के अर्थ में व्यवहृत होता है। क्षमा और अक्रोध यद्यपि समानार्थक माने जाते हैं और एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, तथापि वास्तविक दृष्टि से दोनों के अर्थों में भेद है। अपराधी के प्रति प्रतिकार करने की भावना उत्पन्न

होने के बाद विवेक आदि से उसे दबाकर अपराध को सह लेना क्षमा है। जबकि प्रतिकार की भावना का उत्पन्न न होना अक्रोध है। क्षमा में व्यक्ति सहनशील होता है जब कि अक्रोध में व्यक्ति क्रोध से ही विहीन होता है। अक्रोध में व्यक्ति परमहंस की स्थिति प्राप्त कर लेता है, जबकि क्षमा उस स्थिति तक पहुँचने का सोपान है। इस तरह सर्वप्रथम उपशम, उपशम से क्षमा और क्षमा से अक्रोध की यात्रा समत्वपथ की क्रमिक यात्रा है।

यद्यपि 'हिन्दी शब्दसागर' में क्षमा को तितिक्षा के अन्तर्गत माना है^१ ? लेकिन हमें इन दोनों में अन्तर नहीं लगता है। क्योंकि दोनों का अर्थ एक ही है, शब्द-पर्याय भले अलग-अलग हो।

क्षमा का स्वरूप और महत्त्व :

क्षमा की परिभाषा बताते हुए कहा गया है कि—

बाह्ये चाध्यात्मिके चैव दुःखे चोत्पादिते क्वचित् ।

न कुप्यति न वा हन्ति, सा क्षमा परिकीर्तिता ॥

अर्थात् बाह्य और आध्यात्मिक (आन्तरिक) दुःख के उत्पन्न होने पर जो न कुपित हो और न किसी को कष्ट दे, वह क्षमा है। तत्त्वार्थवार्तिक के अनुसार क्रोध के निमित्त मिलने पर मन में कलुष न होना या शुभ परिणामों से क्रोध आदि की निवृत्ति क्षमा है।^२ आचार्य कुन्दकुन्द ने भी लगभग यही बात कही है कि क्रोध-उत्पत्ति के बाह्य कारणों के प्राप्त होने पर भी क्रोध न करना क्षमा है।^३

क्षमा चित्त की एक प्रकार की सद्वृत्ति होती है। इसमें दूसरों द्वारा पहुँचाये हुए कष्ट, आघात, आक्षेप, अत्याचार, दुर्व्यवहार आदि को आक्रोशरहित होकर धैर्यपूर्वक सहना होता है। क्षमा वस्तुतः चैतसिक एवं मानवीय गुण है। क्षमा वह औषधि है, जो चित्त की आकुलता रूपी व्याधि का उपशमन कर देती है। दूसरे शब्दों में, क्षमा वह गंगा है, जो कलह-पङ्क को समाप्त कर देती है। क्षमा रूपी जल के सिञ्चन से निराकुलता का कल्पवृक्ष लहलहाता है, जिसके शान्ति रूपी मधुर फल का आस्वादन कर मानव-समाज आनन्द से अभिभूत हो सकता है। क्षमा का सागर अगाध है। उसको क्रोध की

१. हिन्दी शब्दसागर, भाग ३ पृष्ठ. १०९७.

२. तत्त्वार्थवार्तिक, पृष्ठ ५२३.

३. द्वादशानुश्रेशा, श्लोक ७१

चि नगारी से गरम नहीं किया जा सकता है । अतः मानव-हृदय में जब भी क्षमा का सागर लहरायेगा, मनुष्य के पाप-कल्मष प्रक्षालित हो जायेंगे और मानव का देवत्व की ओर आरोहण होगा ।

क्षमा का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि क्षमा निर्बलों का बल है, बलवानों का भूषण है । संसार में क्षमा ही सबको वश में करने वाली है । क्षमा से क्या कुछ नहीं साधा जा सकता—

क्षमा बलमशक्तानां, शक्तानां भूषणं क्षमा ।

क्षमा वशीकृतिर्लोकै, क्षमया किन्न साध्यते ॥

भारतीय आचार-दर्शन में आध्यात्मिक विकास के लिए क्षमा को अनिवार्य माना गया है । इससे पूर्व सञ्चित दुःखदायी कर्म क्षीण हो जाते हैं और विद्वेष एवं भय से युक्त चित्त शुद्ध हो जाता है ।¹ मनीषियों की दृष्टि में क्षमा ही अध्यात्मजगत् का सारभूत तत्त्व है—

क्षान्तिरेव महादानं, क्षान्तिरेव महातपः ।

क्षान्तिरेव महाज्ञानं, क्षान्तिरेव महादमः ॥

अर्थात् क्षान्ति (क्षमा) ही महादान है, महातप है, महाज्ञान है और यही महादमन है ।

क्षमा का चिर महत्त्व है । महात्मा कबीर ने तो क्षमाशीलता में ही प्रभु का निवास-स्थान माना है—

जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप ।

जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप ॥²

वस्तुतः क्षमा शान्ति का अमोघ अस्त्र है । जिसके हाथ में क्षमा-शस्त्र है, उसका दुर्जन क्या कर सकता है ? तृणविहीन अग्नि तो स्वतः शान्त हो जाती है । 'क्षमावतो जयो नित्यं साधोरिह सतां मतम्' की उक्ति के अनुसार क्षमावान् की नित्य ही जय होती है, ऐसा सत्पुरुषों का मत है । निष्कर्ष यही है कि सांसारिक पक्ष एवं आध्यात्मिक पक्ष दोनों में क्षमा का महत्त्व निर्विवाद है । समता एवं भाई-चारे के निर्माण में क्षमा से बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है ।

क्षमा के दो रूप :

साधारणतः जीवन जीने के दो पथ हैं—१. गार्हस्थ्य जीवन और

१. क्षमया क्षीयते कर्म, दुःखदं पूर्वसञ्चितम् ।

चित्तं च जायते शुद्धं, विद्वेषभयवर्जितम् ॥

२. उद्धृत, वृहत् सूक्ति कोश, भाग ३, पृष्ठ ३५ ।

२. मुनि जीवन। दोनों की जीवनचर्या पृथक्-पृथक् है। अतः सामान्य-विशेष की अपेक्षा से क्षमा के दो रूप हैं—१. गृहस्थ से सम्बन्धित क्षमा और २. साधक से सम्बन्धित क्षमा। गृहस्थ पत्नी और बाल-बच्चों वाले होते हैं। जब कि साधक गृहस्थ-जीवन से मुक्त होते हैं। वे सांसारिक प्रपंचों से दूर, त्यागी और विरक्त होते हैं। ऐसे व्यक्ति आध्यात्मिक, परोपकारी एवं सदाचारी होते हैं। सहनशीलता उनकी साधना का अभिन्न अंग होता है। इसलिए गृहस्थ तथा साधक—दोनों की क्षमा में पर्याप्त अन्तर है। साधारणतः गृहस्थ सामान्य क्षमा का भागीदार होता है और साधक उत्तम क्षमा का पात्र होता है।

गृहस्थ के अपने कर्त्तव्य होते हैं। अतएव उनकी क्षमा में भी कर्त्तव्य-परायणता होती है। अतः गृहस्थ प्रसंग आने पर क्रोध कर सकता है, दूसरों पर आघात कर सकता है। गृहस्थ को आत्म-रक्षार्थ ऐसा करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। उस बाध्यता में द्वेष की भावना नहीं होती है। जैसे—हमारे राष्ट्र में कोई पक्ष या गुट अपराध करता है। अब यदि हमारे राष्ट्रपति उनके अपराधों को सहन करते रहें, उन्हें दण्ड न दें, तो यह अनैतिक है। अपराधियों को दण्ड देना ही राष्ट्रपति या न्यायाधीश का कर्त्तव्य है। ऐसा करने से उनकी क्षमाशीलता पर कोई आंच नहीं आएगी। कारण, अपराधियों के प्रति न तो उनका राग-भाव होता है, न द्वेष-भाव। यह तो केवल कर्त्तव्य का पालन करना है।

एक नीति वाक्य है कि—

क्षमा शत्रौ च मित्रे च, यतोनामेव भूषणम् ।

अपराधिषु सत्त्वेषु, नृपाणां सैव दूषणम् ॥^१

अर्थात् शत्रुता और मित्रता में यतियों का भूषण क्षमा है। किन्तु अपराधियों में राजाओं के लिए वही दूषण है।

मान लीजिये, इसी तरह कोई देश किसी देश पर आक्रमण करता है। तदर्थ उसके सभी देशवासियों का यह कर्त्तव्य होता है कि वे अपने देश की रक्षा करें। यह युद्ध द्वेषवश नहीं होता, अपितु देश-रक्षा या देश के गौरव की रक्षा हेतु होता है। मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज से सत्रह-बार युद्ध किया। वह प्रत्येक बार पराजित हुआ

१. संस्कृत श्लोक संग्रह, पृष्ठ ५५. अनुच्छेद २, श्लोक ४.

और बन्दी बना। किन्तु पृथ्वीराज ने सत्रहों बार उसके अपराधों को क्षमा कर दिया और हर बार उसे मुक्त कर दिया। पृथ्वीराज क्षमावीर था। शास्त्र कहता है 'क्षमाशस्त्रं करे यस्य, दुर्जनः किं करिष्यति' अर्थात् जिसके पास क्षमा-शस्त्र है, उसका दुर्जन क्या कर सकता है। यद्यपि पृथ्वीराज की यह क्षमा क्षात्र-धर्म की दृष्टि से उचित हो, किन्तु वह क्षमा का अतिरेक ही था। गृहस्थ के लिए क्षमा की एक सीमा है। उसके लिए काटना मना है; फूफकारना आवश्यक है। अन्यथा उसका, उसके समाज और देश का अस्तित्व ही खतरे में होगा।

मुनि की क्षमाशीलता भिन्न है। वह संग्राम आदि के वातावरण से सुदूर है। वह न केवल बाहर से अपितु अन्दर से भी क्षमा का पुजारी होता है। महात्मा कबीर का निम्न कथन इसी की पुष्टि करता है—

खोद खाद धरती सहै, काल कूट बनराय।

कुटिल वचन साधु सहै, और से सहा न जाय ॥^१

साधक दूसरों द्वारा पढ़ूँचाए हुए परीषहों से विचलित नहीं होता। वह तो उन्हें शान्तिपूर्वक सहन करता है। यदि वह परीषहों से उद्विग्न हो जाता है, तो उसकी साधना ही धूमिल हो जाएगी। अतः परीषह तो उसकी साधना की कसौटी है। उदाहरण के लिए हम बीज को लेते हैं। बीज तभी अंकुरित होता है, जब उसे पानी के साथ धूप भी मिलती है। दोनों की उपलब्धि से ही बीज वृक्ष का रूप ले सकता है। इसी प्रकार साधना में अनुकूल स्थिति के साथ प्रतिकूल स्थिति भी उत्पन्न होती है। दोनों प्रकार की स्थिति पर विजय प्राप्त करने से ही साधक साध्य की सिद्धि कर सकता है।

परीषह के आने पर ही साधक के क्रुद्ध होने की शक्यता रहती है। 'खन्तीए णं परीसहे जिणइ'^२ अर्थात् क्षमा से परीषहों पर विजय प्राप्त की जाती है। परीषह बाईस प्रकार के होते हैं। साधक इन परीषहों से स्पृष्ट—आक्रान्त होने पर विचलित नहीं होता। वे इस प्रकार हैं—

१. क्षुधा-परीषह, २. पिपासा-परीषह, ३. शीत-परीषह, ४. उष्ण-परीषह, ५. दंश-मशक-परीषह, ६. अचेल-परीषह, ७. अरति-परीषह,

१. कबीर वाङ्मय, खण्ड ३, पृष्ठ ३५५. २. उत्तराध्ययन सूत्र, २६। ४६.

८. स्त्री-परीषह, ९. चर्या-परीषह, १०. निषद्या-परीषह, ११. शय्या-परीषह, १२. आक्रोश-परीषह, १३. वध-परीषह, १४. याचना-परीषह, १५. आयाम-परीषह, १६. रोग-परीषह, १७. तृण-स्पर्श-परीषह, १८. मल-परीषह, १९. सत्कार-पुरस्कार-परीषह, २०. प्रज्ञा-परीषह, २१. अज्ञान-परीषह, २२. दर्शन-परीषह^१ ।

जो साधक उपर्युक्त परीषहों के आने पर क्रुद्ध और उद्विग्न नहीं होता; शान्ति से उन्हें सहन करता है, वह अपनी साधना में सफलता प्राप्त करता है। शास्त्रों में कहा है कि साधक को जो भी कष्ट हो, वह उसे प्रसन्नचित्त से सहन करे।^२ जो अपनी साधना में उद्विग्न नहीं होता, वही वीर साधक प्रशंसित होता है।^३ यही साधक की सच्ची क्षमाशीलता है।

‘जैसे को तैसा’ वाली नीति घातक :

तुम पर हो जिसका जो भाव ।

उससे करो वही बर्ताव ॥^४

‘जैसे को तैसा’ एक नीति वचन है। कतिपय विद्वान् इस नीति को ही एक मात्र व्यावहारिक मानते हैं। हिन्दी युग प्रवर्तक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसे उचित माना है। उनकी मान्यता है कि कपटी कुटिल व्यक्तियों के साथ कपट और कुटिलता करना ही समीचीन है। उन्होंने लिखा है—

कपटी कुटिल मनुष्यों से जो जग में कपट न करते हैं ।

वे मतिमन्द मूढ़ नर, विश्वघ्न, पाय पराभव मरते हैं ॥

उनमें कर प्रवेश फिर उनको शठ यों मार गिराते हैं ।

कवचहीन तनु से ज्यों पैने बाण प्राण ले जाते हैं ॥^५

जबकि भगवान् महावीर ‘जैसे को तैसा’ इस नीति के विरोधी हैं। वे कहते हैं—

तहेव काणं काणेत्ति, पंडगं पंडगे त्ति वा ।

वाहियं वा वि रोगि त्ति, तेणं चोरे त्ति नो वए ॥^६

१. उत्तराध्ययन सूत्र, २. ३. (विस्तृत जानकारी के लिए ‘उत्तराध्ययन’ का द्वितीय अध्याय ‘परीषह प्रविभक्ति’ द्रष्टव्य है।)

२. सूत्रकृतांग, १. ९. ३१. ३. आचारांग, १. २. ४.

४. मैथिलीशरणगुप्त कृत ‘हिन्दू’, पृष्ठ ९१.

५. द्विवेदी काव्यमाला, पृष्ठ २८१. ६. दशवैकालिकसूत्र, ७. ११.

अर्थात्—‘काने को काना, नपुंसक को नपुंसक, व्याधिग्रस्त को रोगी और चोर को चोर भी न कहे।’ क्योंकि यह भाषा कठोर और प्राणियों का उपघात करने वाली, चोट पहुँचाने वाली है। यह सत्य-वचन होते हुए भी पाप का बन्धन करने वाली है।^१

‘जैसे को तैसा’ की नीति कलह की जड़ है। ओह ! गलती हो गई/माफ कीजिये/क्षम्य हूँ/सॉरी आदि शब्द वाक्य लोक-प्रसिद्ध हैं। ये हृदय की सरलता को सूचित करते हैं जबकि ‘जैसे को तैसा’ की नीति विद्वेष भावना से पनपती है। विद्वेष सब में है। शुरु में पारस्परिक छींटा-कसी ही होती है। किन्तु बाद में वही अग्नि में घृत का काम कर जाती है। बात का बतंगड़ बनने में विलम्ब नहीं लगता। ‘तू-तू’, ‘मैं-मैं’ की अहं-वृत्ति का विस्तार होता जाता है। उस समय उन्हें कलहपङ्क में लिप्त न होने का सुझाव देना भी अर्थहीन हो जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर में भी ‘जैसे को तैसा’ की नीति घातक ही सिद्ध हुई है। आज विश्वयुद्ध की सम्भावना स्पष्ट है। हमारे राष्ट्र में पञ्जाब आदि प्रदेशों की भी यही स्थिति है। सचमुच, जैसे को तैसा की नीति विध्वंशक है। इससे हमारी पारस्परिक खाइयों को पाटने की अपेक्षा उपेक्षणीय है। इससे तो वे और अधिक गहरी और चौड़ी बनती जाती हैं। इससे तो वैर की परम्परा बढ़ती ही है, घटती नहीं। वैर के यौवन में वृद्धत्व की सम्भावना नहीं रहती है। मनुष्य मर सकता है, लेकिन वैर सदैव जीवित ही रहता है। वैर का उत्पत्ति-स्थान ‘जैसे को तैसा’ की नीति है।

क्षमा वीरता है, कायरता नहीं :

यह कहा गया है कि क्षमा वीरों का भूषण है, कायरों का नहीं है। यद्यपि कहा जाता है, क्षमा कायरता की निशानी है। दोनों ही जन-श्रुतियाँ हैं, किन्तु दोनों में पारस्परिक विरोध है। वास्तविकता के बोध के लिए दोनों का तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षित है। वस्तुतः दोनों का क्षमा का, कायरता के साथ सम्बन्ध स्थापित करना अनुपयुक्त है। परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है। कायरता मिश्रित सहनशीलता को क्षमाशीलता कभी नहीं कहा जा सकता। लोग कहते हैं, क्षमा वही व्यक्ति करता है, जो अशक्त, निर्बल या डरपोक है किन्तु यथार्थतः ऐसा नहीं है। क्षमाशीलता न तो अशक्तता है, न

निर्बलता और न ही डरपोकता । हम देखते हैं कि कायर व्यक्ति वही होता है जिसमें उत्साह, बल या साहस की कमी होती है । जबकि क्षमा में इनकी कमी हो, यह आवश्यक नहीं है । अधिकांशतः क्षमावन्त इनसे सम्पन्न होता है । निर्बल का बल कितना ? अतः बलवानों के लिए निर्बलों का अनुचित कार्य सदैव क्षम्य है । कबीर ने ठीक ही कहा है —

छिमा बडेन को चाहिए, छोटन को उत्पात ।

कहा विष्णु को घट गयो, जो भृगु मारी लात ॥^१

क्षमावान् प्रत्येक स्थिति—चाहे वह अनुकूल हो या प्रतिकूल—का सामना कर लेता है । कायर में सहनशक्ति बाह्य होती है, आन्तरिक नहीं । वह प्रतिकार करना चाहता है किन्तु कर नहीं पाता, वह क्षमाशील नहीं है । जबकि क्षमाशील प्रतिकार करना ही नहीं चाहता । क्षमा में पलायनवादिता नहीं होती है । कायरता तो अपने जन्म के साथ पलायनवादिता की उत्प्रेरणा देती है । क्षमा में धैर्य और पुरुषार्थ के स्वर होते हैं । कायर तो भाग्य के चरणों में सोया रहता है । कायर उत्तेजित तो होता है, परन्तु वह भीतर से भयभीत रहता है और इसी कारण अपराधी का प्रतिकार नहीं करता है जबकि क्षमाशील सदैव निडर होता है । जब वह किसी की बुराई चाहता नहीं, करता नहीं और अपने प्रति बुराई करने वालों पर कभी क्रोध करता नहीं, तब भला वह भयभीत क्यों होगा । क्षमावान् की उपमा पृथ्वी और वृक्ष आदि से की गई है । सच्चे क्षमावान् को प्राणों का भय भी नहीं रहता । प्रेमचन्द 'रंगभूमि' में कहते हैं, 'प्राणभय से दुबक जाना कायरों का काम है ।' प्रतियोगी से डर कर भाग जाना कायरता है । साहस, बल, वीर्य होते हुए भी प्रतियोगी का प्रतिकार न करना क्षमा है । क्षमा में भय की अनुपस्थिति नितान्त जरूरी है ।

कायरता की परवशता में मनुष्य अपराध या भूलें करता है । जबकि क्षमा की भागीरथी में उन अपराधों के कलमष धोये जाते हैं । क्षमावन्त अपने अन्तरंग के शत्रुओं—क्रोध, द्वेष आदि को परास्त करने की सोचता है । कायर बाह्य शत्रुओं से मुकाबला कर भी सकता है, लेकिन आन्तरिक शत्रुओं को जीतना उसके लिए टेढ़ी खीर है । हम स्वयं अनुभव कर सकते हैं कि क्रोध-शत्रु को जीवन-दुर्ग से

१. उद्धृत—बृहत्सूक्ति कोश, भाग ३, पृष्ठ ३५.

निकालना कितना दुष्कर है। सर्प को या शत्रु को मारा जा सकता है किन्तु क्रोध रूपी सर्प शत्रु को मार भगाना दुष्कर है।

इसीलिए क्षमा को वीरता कहा गया है, वीरों का अलङ्कार कहा गया है। वीरों को ही क्षमा अलङ्कृत कर सकती है। दिनकर का अधो अंकित सूक्त वचन कितना सटीक है—

क्षमा शोभती उस भुजंगको, जिसके पास गरल हो।

उसको क्या, जो दंतहीन, विषरहित विनीत सरल हो ॥^१

विजयवल्लभसूरि के अनुसार जो नम्र बनकर, सरल और शुद्ध होकर दूसरों के दोषों को क्षमा कर देता है एवं अपने अनुचित व्यवहारों के लिए क्षमा मांग लेता है, वह सच्चे अर्थों में वीर है।^२ तिरुक्कुरलकार का कथन है कि मूर्खों की असभ्यता को चेहरे पर बिना एक सलवट लाये सहन कर लेना वीरता है। जो पीड़ा देने वालों को बदले में पीड़ा देते हैं, विद्वज्जन उन्हें सम्मान नहीं देते; किन्तु जो अपने शत्रुओं को क्षमा कर देते हैं, वे स्वर्ण के समान बहुमूल्य माने जाते हैं।^३ स्थानांगसूत्र में चार प्रकार के शूरवीरों का उल्लेख हुआ है, जिनमें क्षमाशूर सर्वप्रथम हैं।^४

महाभारत में इस सम्बन्ध में एक-दो महत्त्वपूर्ण पद्य मिलते हैं, जिसमें क्षमा को वीरता कहा गया है, कायरता नहीं। उसमें लिखा है—

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते ।

यदेनं क्षमया युक्तशक्तं मन्यते जनः ॥

सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमाहि परमं बलम् ।

क्षमागुणो ह्यशक्तानां, शक्तानां भूषणं क्षमा ॥^५

अर्थात् क्षमाशील पुरुषों में एक ही दोष का आरोप होता है, दूसरे की तो सम्भावना ही नहीं है। वह दोष यह है कि क्षमाशील मनुष्य को लोग असमर्थ समझ लेते हैं। किन्तु क्षमाशील पुरुष का वह

१. उद्भृत् बृहत् सूक्तिकोश, भाग ३. पृष्ठ. ३७.

२. उद्भृत् खामेमि सब्बे जीवे, पृष्ठ ८.

३. तिरुक्कुरल, उद्भृत्—तीर्थकर, अक्टूबर, १९८३.

४. स्थानांग, ४. ३. ३१७.

५. महाभारत, उद्योगपर्व, ३०. ४८-४९.

दोष नहीं मानना चाहिये; क्योंकि क्षमा बहुत बड़ा बल है। क्षमा असमर्थ मनुष्यों का गुण तथा समर्थों का भूषण है।

क्षमा शत्रुता की विनाशिका :

अंग्रेजी कहावत है, 'to err is human to forgive is divine.' अर्थात् गलती करना इन्सान का काम है; उसे क्षमा करना परमात्मा का काम। यथार्थतः यह सही है कि गलती करना मनुष्य का स्वभाव है। किन्तु दूसरों की गलतियों को क्षमा करना दैवीय गुण है। यदि गलतियों (अपराधों) को क्षमा नहीं किया जावेगा और अपराधी को दण्डित करने की ही भावना दृढ़तर होती जावेगी तो इससे एक दूसरे के प्रति शत्रुता की गांठ मजबूत होती जावेगी।

क्षमा दण्ड से अधिक पुरुषोचित एवं वीरोचित है। संसार में ऐसी गलतियाँ एवं अपराध कम हैं, जिन्हें हम चाहें और क्षमा न कर सकें। दूसरों की भूलों को विस्मरण कर देना भी क्षमा करने जितना ही श्रेयस्कर है। अपनी भूलों, गलतियों या अपराधों को कभी भी क्षमा नहीं करना चाहिए। ऐसी क्षमा, क्षमा होते हुए भी विघातक है।

तिरुवल्लुवर का कथन है कि जो लोग बुराई का बदला लेते हैं, बुद्धिमान उनका सम्मान नहीं करते, किन्तु जो अपने शत्रुओं को क्षमा कर देते हैं, वे स्वर्ण के समान बहुमूल्य समझे जाते हैं।^१ वास्तव में क्षमा करने का आनन्द तो उसी समय आता है, जब मनुष्य अपने शत्रु को क्षमा करता है, शत्रुता को समाप्त करने के लिए क्षमा-शस्त्र का प्रयोग करता है। यदि मनुष्य अपने शत्रु के लिए अपनी क्रोध रूपी भट्टी को गरम करेगा तो वह भट्टी उसको स्वयं भूनकर राख कर देगी। सत्यतः शत्रु से शत्रुता करना शत्रुता को दूना करना है। शत्रु शत्रुता करता है और फिर दूसरों की शत्रुता का भागी होता है। इस तरह से शत्रुता आगे बढ़ती जाती है, जैसे आग से आग। क्षमा एक ऐसा माध्यम है जो शत्रु से मैत्री के टूटे तारों को जोड़ देती है। अपनी शीतलता से दूसरे की क्रोध रूपी आग को शांत कर देती है। शत्रुता की समाप्ति के लिए क्षमा से बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं है। सच्चे क्षमावन्त का यह धर्म होता है कि वह अपने

१. उद्धृत, -विश्वसूक्तिकोश, भाग २, पृष्ठ ११८.

शत्रु का हृदय भी न दुःखाए, उसकी भी भलाई करे। उसके निर्मल हृदय में प्रशम, अनुकम्पा, वात्सल्य आदि भाव सदैव छलकते रहना चाहिये। ऐसी उत्कृष्ट क्षमा तभी आ सकती है, जब व्यक्ति भूतमात्र को अपने समान समझे। ऐसा व्यक्ति ही अपने शत्रु को क्षमा और प्रेम कर सकता है। क्षमा सचमुच महान् है। यह हृदय का उत्तम धर्म तथा मानवीयभावों में सर्वोपरि है। आचारांग सूत्र में कहा है—

अत्थि सत्थं परेण परं, नत्थि असत्थं परेण परं।

अर्थात् शस्त्रएक-से-एक बढ़कर है, परन्तु अशस्त्र (क्षमा), एक-से-एक बढ़कर नहीं है अर्थात् क्षमा की साधना से बढ़कर श्रेष्ठ दूसरी कोई साधना नहीं है।¹

क्षमा हार्दिक हो, यान्त्रिक नहीं :

आज मनुष्य-जीवन में भी यान्त्रिकता आ गई है। फलतः उसका व्यवहार भावना-शून्य होता जा रहा है। आत्म-दर्शन का अभाव तथा प्रदर्शन का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। शिष्टाचार एक औपचारिक हो गया है। आज हम छोटे-छोटे बच्चों को भी 'साँरी-साँरी' कहते हुए सुन सकते हैं। यह केवल औपचारिकता है। ऐसी क्षमा आध्यात्मिक दृष्टि से फलदायक नहीं हो सकती। अतः क्षमा को हार्दिक होना चाहिये।

वस्तुतः क्षमा हमारे हृदय या मनोभावों पर आधारित है। क्षमा न करते हुए भी व्यक्ति क्षमावान् हो सकता है और बाह्य रूप से क्षमा करते हुए भी क्षमावान् नहीं होता। इसी तरह क्रोध न करते हुए भी मनुष्य क्रोधी हो सकता है और क्रोध करते हुए भी क्रोधी नहीं भी हो सकता है। क्षमा और क्रोध कर्ता के भावों पर अवलम्बित हैं, बाहरी क्रिया पर नहीं।

क्षमा के सम्बन्ध में जैन दृष्टिकोण :

क्षमा जैन आचारदर्शन का सारभूत तत्त्व है। जैन शास्त्रों में क्षमा दशलक्षण धर्म का प्रथम धर्म² शुक्लध्यान का पहला आलम्बन³, आर्जव का चतुर्थ स्थान⁴ और संवर का तिरालीसवां भेद⁵ है। भूधर-

१. आचारांगसूत्र, (१. ३. ४)

२. तत्त्वार्थ सूत्र, ९. ६.

३. स्थानांग, ४. ३.

४. वही, ५. १. ५१.

५. द्रष्टव्य—आनन्दप्रवचन, भाग

दास ने दशधर्म रूपी कल्पवृक्ष की जड़ क्षमा को बताया है।¹ इसकी साधना करके उपसर्गों और परीषहों पर विजय प्राप्त की जाती है।² 'कालुष्यानुत्पत्तिः क्षमा'—अपने परिणामों में कलुषता की उत्पत्ति न होना क्षमा है।³

क्षमा का माहात्म्य बताते हुए रङ्गू कहते हैं कि उत्तम क्षमा तीन लोक में सारभूत है, जन्म-मरण रूप संसार से तारने वाली है। क्षमा रत्नत्रय (सम्यक्-दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र्य) को प्राप्त कराती है और दुर्गति के दुःखों का हरण करती है। क्षमा से अनेक गुण प्राप्त होते हैं। यह मुनियों को प्रिय है, ज्ञानीजनों के लिए चिन्तामणि के समान है। मनःस्थिरता पर इसकी प्राप्ति होती है। रङ्गू के मतानुसार क्षमा सब प्राणियों के द्वारा पूज्य है। यह मिथ्यात्व रूपी तिमिर को दूर करने के लिए मणि (या दीपक) के समान है। जहाँ असमर्थ पुरुषों के दोष क्षमा किए जाते हैं और उन पर रोष नहीं किया जाता है, जहाँ कठोर वचन सहन किये जाते हैं और चेतन के गुण चित्त में धारण किये जाते हैं, वहाँ उत्तम क्षमा होती है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।⁴

एकदा भगवान् महावीर के शिष्य गौतम ने उनसे प्रश्न पूछा कि भन्ते ! क्षमा करने से जीव को क्या प्राप्त होता है ? भगवान् ने उत्तर दिया कि क्षमा करने से वह मानसिक प्रसन्नता को प्राप्त करता है। मानसिक प्रसन्नता को प्राप्त हुआ व्यक्ति सब प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के साथ मैत्री-भाव उत्पन्न करता है। मैत्री-भाव को प्राप्त हुआ जीव भावना को विशुद्ध बनाकर निर्भय हो जाता है।⁵ इसी तरह एक अन्य प्रश्नोत्तर में भगवान् ने गौतम को बताया कि क्षमा से परीषहों पर विजय प्राप्त की जाती है।⁶ कार्तिकेय स्वामी

१. भूधरदासकृत वैराग्यभावना, (१)

२. सर्वं यो सहते नित्यं, क्षमादेवीमुपास्य सः ।

पाश्चात् जायते जित्वोपसर्गाश्च परीषहान् ॥

उद्धृत—सम्यग्ज्ञान, दशलक्षणधर्मांक, १९७८ पृष्ठ ३.

३. सर्वार्थसिद्धि, ९. ६.

४. ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि, दशलक्षणपूजा, पृष्ठ १९३-१९४.

५. उत्तराध्ययनस, ब्रू २९. ७१. ६. वही, २९. ४६.

कहते हैं, जो देव, मानव तथा तिर्यञ्च पशुओं के द्वारा घोर उपसर्ग पहुँचाने पर भी क्रोध से तप्त नहीं होता, उसे ही क्षमा-धर्म होता है।^१ जो क्रोध के उत्पन्न होने के साक्षात् बाह्य कारणों के मिलने पर जरा-सा भी क्रोध नहीं करता है, वही क्षमा धर्म का आराधक होता है।^२

जयवल्लभ ने क्षमा को बड़े से बड़े तप से भी श्रेष्ठ माना है।^३ कुरलकाव्यकार के अनुसार उपवास करके तपश्चर्या करने वाले निस्सन्देह महान् हैं, पर उनका स्थान उन लोगों के पश्चात् ही है, जो अपनी निन्दा-आलोचना करने वालों को क्षमा कर देते हैं।^४ उनका उपदेश है कि दूसरे लोग तुम्हें हानि पहुँचायें उसके लिए तुम उन्हें क्षमा कर दो और यदि तुम उसे भूल सको तो यह और भी अच्छा है।^५ इसी प्रकार पं० आशाधर का कथन है कि अपना अपराध करने वालों का शीघ्र ही प्रतिकार करने में समर्थ रहते हुए भी जो पुरुष अपने उन अपराधियों के प्रति क्षमा धारण करता है, उस क्षमा रूपी अमृत का सेवन करने वाले व्यक्ति को सज्जन पुरुष पापों को नाट कर देने वाला समझते हैं।^६ आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं, जो मुनि क्रोध के अभाव रूप क्षमा से मण्डित है, वह मुनि समस्त पाप-कर्म का अवश्यमेव क्षय करता है।^७ तिरुक्कुरलकार के अनुसार क्षमा आध्यात्मिक, नैतिक एवं सामाजिक तीनों ही क्षेत्र में उपयोगी है। उनका मत है कि संसार छोड़ने वाले महापुरुषों से भी बढ़कर सन्त वह है, जो अपनी निन्दा करने को हंसते-मुसकराते सहन कर लेता है। तिरुक्कुरल में लिखा है कि दूसरे लोग तुम्हें यदि नुकसान पहुँचायें तो तुम उन्हें क्षमा कर दो और यदि तुम उसे जड़मूल से भुला सको तो यह और भी श्रेयस्कर है। धरती उन लोगों को भी शरण देती है, जो उसे बेरहमी से खोदते हैं। इसी तरह तुम भी उन

१. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, ३६४.

२. उद्भृत—खामेमि सव्वे जीवे, पृष्ठ २.

३. वज्रालम्ब, ८. ५.

४. कुरलकाव्य, १६. २.

५. कुरलकाव्य, १६. १०.

६. अनगार धर्मामृत, ६. ५.

७. भावपाहुड़, १०८.

लोगों की कर्कश, अशालीन, तीखी, मर्मभेदी वाणी सहन करो। क्षति चाहें कितनी ही बड़ी क्यों न उठानी पड़ी हो, किन्तु बड़प्पन इसी में है कि मनुष्य उसे मन में न लाये और बदला लेने के इरादे से दूर रहे। बदला लेने का आनन्द तो एक ही दिन का होता है, किन्तु क्षमा करने वाले का गौरव चिरस्थायी/मृत्युञ्जयी होता है।^१

क्षमा का आदान-प्रदान परस्पर यश एवं सौहार्द्र बढ़ाता है। महोपाध्याय समयसुन्दर लिखते हैं—

क्षमा करंता खरच न लागै, भांगे कोड़ कलेस जी।

अरिहंत देव आराधक थावै, व्यापै सुयश प्रवेश जी ॥^२

आचार्य हस्तीमल जी ने क्षमा के आदान-प्रदान को सम्यक्त्व प्राप्ति का हेतु बताया है। वे कहते हैं सम्यक्त्व की प्राप्ति तभी हो सकती है जबकि काम, क्रोध, मान, मद, मोह मात्सर्यादि विषय-कषायों को मन्द कर पूर्वकृत दुष्कृत्यों के लिए प्राणिमात्र से विशुद्ध मन से क्षमा-याचना करे और अपने प्रति किये गये अपराध के लिए प्राणिमात्र को क्षमा प्रदान करें। आचार्य विजयवल्लभसूरि के मतानुसार पुराने संचित और आत्मा के साथ बद्ध कर्मों को घटा सकें या हटा सकें, इसके लिए सबसे अच्छी साधना/प्रक्रिया क्षमा-पना है।^३

जैन धर्म में क्षमा का व्यावहारिक पक्ष :

जैन साधना में क्षमा की प्रधानता है। यद्यपि विश्व की सभी धार्मिक परम्पराओं में क्षमा को स्थान दिया गया है। किन्तु जैन धर्म में क्षमा का जो चरम उत्कर्ष दिखाई देता है, वैसा अन्य किसी धर्म में दिखाई नहीं देता। संक्षेप में जैनों में क्षमा की साधना विविध रूप में की जाती है—

(क) पर्व के रूप में क्षमा : जैनधर्म का प्रमुख वार्षिक पर्व है, 'पर्युषण'। इसमें क्षमा के स्थान को देखकर इसे क्षमावणी/क्षमा-पना पर्व भी कहते हैं। क्षमा के द्वारा मैत्री और प्रेम का प्रसार करना—यही इस पर्व की पृष्ठभूमि है। इस पर्व में गृहस्थ और मुनि

१. तिरुक्कुरल—तीर्थकर, अंक. अक्टूबर, १६८३

२. समयसुन्दरकृति कुमुमाञ्जलि, क्षमा छत्तीसी, ३३ (पृष्ठ ५२६).

३. उद्धृत—खामेमि सब्बे जीवे, पृष्ठ ८.

सभी परस्पर क्षमा-याचना करते हैं, ताकि विगत व्यवहार से यदि किसी के मनोभावों को ठेस पहुँची हो तो वह क्लेश समाप्त हो जाए। क्षमा-याचना में एक विशेष आदर्श दृष्टि-गोचर होता है। सामान्यतः हर आदमी अपने प्रतिद्वन्द्वी से क्षमा मंगवाना चाहता है, जो कि उसकी पराजय का परिचायक है। किन्तु इस पर्व में प्रतिष्ठा क्षमा-याचक की है। व्यक्ति में स्वतः क्षमा-प्रार्थना की भावना उत्पन्न होती है। जैनधर्म में ८४ लाख जीव-योनियाँ मानी जाती हैं। व्यक्ति उन योनियों में निवास करने वाले सभी जीवों से क्षमा-प्रार्थना करता है। सभी जैनियों का एक ही सामूहिक गान होता है—

त्वामेभि सव्वे जीवे, सव्वे जीवा त्वमंतु मे ।

मिती मे सव्व भूएसु, वेरं मज्झं न केणई ॥^१

अर्थात् मैं समस्त जीवों से क्षमा-याचना करता हूँ। सब जीव मुझे क्षमा करें। सभी जीवों के प्रति मेरा मैत्रीभाव है, मेरा किसी भी जीव के साथ वैर-विरोध नहीं है।

पर्युषण पर्व में क्षमा का आदान-प्रदान करना अनिवार्य है। इस पर्व के बाद भी यदि किसी का आपस में मनोमालिन्य रहता है, तो उसका पर्व मनाना निरर्थक है। इसी परिप्रेक्ष्य में जैन साहित्य में एक ऐतिहासिक प्रसंग प्राप्त होता है। एक बार राजा उदायन को उज्जैनी के राजा प्रद्योत से युद्ध करना पड़ा। प्रद्योत उदायन के द्वारा कैद कर लिया गया। उदायन अपने राज्य सिंधुसौवीर की ओर लौट रहा था कि मार्ग में पर्युषण-पर्व की वेला आ गयी। उदायन जैनी था। उसने पर्व मनाया। सभी से क्षमा-प्रार्थना की। उदायन की क्षमाभावना स्तुत्य है। उसने अपने शत्रु प्रद्योत से भी क्षमा मांगी। उदायन ने उसे भी क्षमा कर दिया और उसका राज्य उसे लौटा दिया।^२ यह घटना जैन साहित्य में क्षमा के आदर्श को उपस्थित करती है। सचमुच यह उत्तम क्षमा का ज्वलन्त उदाहरण है।

१. (क) आवश्यक सूत्र, पगामसिज्जाय की अन्तिम गाथा,

(ख) मूलाचार, २०८.

२. द्रष्टव्य—(क) आवश्यक चूर्णि, भाग १, पृष्ठ ४०१

(ख) दशवैकालिक चूर्णि, पृष्ठ ६१

(ग) निशीथचूर्णि, भाग ३, पृष्ठ १४७

पर्युषण में क्षमा का आदान-प्रदान पूर्णतः अपरिहार्य है। निशीथ-चूर्णि में कहा गया है कि यदि अन्य समय में हुए क्लेश कटुता की उस समय क्षमा-याचना न की गई हो तो पर्युषण में अवश्य कर लेवें।^१ जैनदर्शन के विद्वान् डॉ० सागरमल जैन इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि जैन आचार-दर्शन की मान्यता है कि यदि श्रमण साधक पक्षान्त तक अपने क्रोध को शान्त कर क्षमायाचना नहीं कर लेता है, तो उसका श्रमणत्व समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार गृहस्थ उपासक यदि चार महीने से अधिक अपने हृदय में क्रोध के भाव बनाये रखता है और जिसके प्रति अपराध किया है, उससे क्षमा-याचना नहीं करता तो वह गृहस्थ-धर्म का अधिकारी नहीं रह पाता है। इतना ही नहीं, जो व्यक्ति एक वर्ष से अधिक तक अपने क्रोध की तीव्रता को बनाये रखता है और क्षमा-याचना नहीं करता, वह सम्यक्-श्रद्धा का अधिकारी भी नहीं होता है, और इस प्रकार जैनत्व से भी च्युत हो जाता है।^२

(ख) क्षमा की पूजा—जिस प्रकार जैनधर्म में जिनत्व की प्राप्ति के लिए जिन की पूजा की जाती है, उसी प्रकार क्षमा गुण की प्राप्ति के लिए क्षमा की पूजा की जाती है। यह प्रथा अधिकांशतः दिगम्बर जैन परम्परा में प्रचलित है। क्षमा की पूजा से क्रोध का विनाश और सहिष्णुता का विकास होता है। इसकी पूजा विधिवत् होती है। इसके लिए भी लोग जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीपक, धूप, फल आदि अर्घ अर्पित करते हैं। महाकवि रङ्ग के शब्दों में—

कोपादिरहितां सारां सर्वसौख्यकरां क्षमाम् ।

पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ॥

अर्थात् कोप आदि से रहित, सारभूत और सब सुखों की आकर रूप क्षमा की मैं उसकी प्राप्ति के लिए परम भक्तिपूर्वक पूजा करता हूँ।

(ग) क्षमा-मन्त्र—जैनियों में क्षमा को मन्त्र के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। मन्त्र है, 'ॐ ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्गताय उत्तम-

१. निशीथभाष्यचूर्णि, (३१७९)

२. जैन, बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन,
भाग २, पृष्ठ ४१०

क्षमाधर्माङ्गाय नमः' । क्षमा की उपलब्धि के लिए जैन लोग इसका जप करते हैं ।

(घ) क्षमा-व्रत—इसी प्रकार जैन धर्मावलम्बी क्षमाधर्म की प्राप्ति हेतु व्रत-तप भी करते हैं । उपवास आदि करके लोग इसकी आराधना करते हैं । भाद्र शुक्ला पञ्चमी को क्षमागुण की प्राप्ति के निमित्त विशेष आराधना की जाती है ।

इस प्रकार जैनधर्म में क्षमा की साधना के अनेक रूप हैं । जैन धर्मानुयायी पर्व, पूजा, मन्त्र, व्रत आदि के माध्यम से इसकी साधना करते हैं ।

जैन तीर्थङ्कर महावीर : परम क्षमामूर्ति

तीर्थंकर महावीर परम क्षमाशील थे । 'खंतिसूरा अरिहंता' की उक्ति के अनुसार वे क्षमावीर थे । उन्होंने क्षमाधर्म का उत्कृष्ट रूप से पालन किया था । उनके प्रवचन भी क्षमाधर्म से परिपूर्ण होते थे । तीर्थंकर महावीर की क्षमाशीलता सर्वाधिक उल्लेखनीय है । महावीर का जीवन क्षमा का आदर्श था । उनकी क्षमा विलक्षण थी । उनके साधनाकाल में अनेक ऐसे प्रसंग हैं जो उनकी क्षमाशीलता को प्रतिबिम्बित करते हैं ।

आचारांग सूत्र में भगवान् महावीर की विहारचर्या के विषय का निरूपण करते हुए उनकी आदर्श क्षमा का दिग्दर्शन कराया गया है । उसमें लिखा है, "भगवान् के शरीर पर भ्रमर बैठकर रसपान करते थे । रस प्राप्त न होने पर क्रुद्ध होकर भगवान् के शरीर पर डंक भी लगाते थे । वे ध्यान में रहते तब कभी सांप, और कभी नेवला, कभी कुत्ते काट खाते, कभी चींटियाँ डांस, मच्छर और मक्खियाँ सतातीं । कभी उन्हें चोर और पारदारिक सताते तो कभी हाथ में भाले लिए हुए ग्राम-रक्षक । भगवान् को कभी स्त्रियों और कभी पुरुषों के द्वारा कृत-काम सम्बन्धी उपसर्ग सहने होते । बहुत से लोग उनके साथ दुर्व्यवहार करते, परन्तु भगवान् के मन में प्रतिकार का कोई संकल्प भी नहीं उठता । लाढ़-प्रदेश में विहार करते हुए तो उनकी सहनशीलता चरम सीमा पर थी । अनेक लोग श्रमण महावीर को कुत्ते काट खाएँ, इस उद्देश्य से 'छू-छू' कर कुत्ते को भगवान् के पीछे लगाते । कुछ लोग दण्ड, मुष्टि, भाला आदि शस्त्रों से, तो कुछ लोग चपटा, मिट्टी के ढेले और कपाल (खप्पर) से भगवान् पर

प्रहार करते । कुछ लोग उनका माँस काट लेते । कभी-कभी शरीर पर धूल डाल देते या थूक देते । कुछ लोग ध्यान में स्थित भगवान् को ऊँचा उठाकर नीचे गिरा देते । उन्हें आसन से स्खलित कर देते थे फिर भी भगवान् क्षमाशील रहते थे । वे देहभाव से परे होकर आत्मस्थ रहते थे ।^१

क्षमा के सम्बन्ध में हिन्दूधर्म का दृष्टिकोण :

हिन्दूधर्म के अनेक ग्रन्थों में महाभारत प्रमुख है । महाभारत में क्षमा का महत्व स्वीकृत करते हुए इसे ही धर्म, यज्ञ, वेद और शास्त्र कहा गया है ।^२ इसे ही ब्रह्म, सत्य, भूत, भविष्य, तप तथा पवित्रता के रूप में निर्दिष्ट किया गया है और यह लिखा है कि क्षमा ने ही सम्पूर्ण जगत् को धारण कर रखा है ।^३ महर्षि वेदव्यास का यह कथन भी क्षमा की महानता को प्रस्तुत करता है कि क्षमा तेजस्वियों का तेज है, तपस्वियों का ब्रह्म है, सत्यवादियों का सत्य है, यही यज्ञ है और यही मनोनिग्रह है ।^४ क्षमा को ब्रह्म आदि के रूप में स्वीकार करके महाभारतकार ने क्षमा की व्यापकता को सिद्ध किया है ।

महाभारत में क्रोध की निन्दा करते हुए क्षमा की प्रशंसा की गई है । उसमें कहा गया है कि यदि मनुष्य पृथ्वी के समान क्षमाशील न हों, तो मनुष्यों के बीच कभी संधि हो ही नहीं सकती । क्योंकि झगड़े का मूल तो क्रोध ही है ।^५ इसीलिए महाभारतकार कहते हैं, जिसने पूर्व में तुम्हारा उपकार किया हो, उससे यदि कोई भारी अपराध हो जाए, तो भी पूर्व के उपकार को स्मरण कर उस अपराधी को तुम्हें क्षमा कर देना चाहिये ।^६ संक्षेप में, महाभारत में क्षमा को अत्यधिक महत्व दिया गया है । क्षमा के सम्बन्ध में उसका

१. आचारांग, १. ९.

२. क्षमा धर्मः क्षमा यज्ञः, क्षमावेदः क्षमाश्रुतम्—महाभारत,

३. क्षमा ब्रह्म क्षमा सत्यं, क्षमा भूतं च भविष्य ।

क्षमा तपः क्षमा शौचं, क्षमयेदं धृतं जगत् ॥ -वही.

४. वही, वनपर्व, २९.४०

५. यदि न स्युर्मानुषेषु क्षमिणः पृथिवीसमाः ।

न स्यात् संधिर्मनुष्याणां क्रोधमूलो ही विग्रहः ॥—वही.

६. पूर्वोपकारी यस्ते स्यादपरादे गरीयसी ।

उपकारेण सेत् तस्य क्षन्तव्यमपराधिनः ॥—वही.

दृष्टिकोण व्यापक है। उसके अनुसार क्षमा इहलोक एवं परलोक—दोनों में लाभदायक है। महाभारतकार का कथन है कि—क्षमावानों के लिए यह लोक है, उन्हीं के लिए ही परलोक है। क्षमाशील व्यक्ति इस लोक में सम्मान और परलोक में उत्तम गति प्राप्त करता है।^१

वेदव्यास का कथन है कि इस जगत् में क्षमा वशीकरण रूप है। भला, क्षमा से क्या नहीं सिद्ध होता? जिसके हाथ में शान्ति/क्षमा रूपी तलवार है, उसका दुष्ट पुरुष क्या कर लेंगे? तृणरहित स्थान में गिरी हुई अग्नि अपने आप बुझ जाती है। क्षमाहीन पुरुष अपने को तथा दूसरे को भी दोष का भागी बना लेता है। एकमात्र क्षमा ही शान्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय है।^२

गीता में क्षमा को ईश्वरीय गुण^३ एवं ईश्वरीय विभूति^४ कहा गया है। गीता का कथन है कि क्षमा, दैवीसम्पदा को प्राप्त हुए पुरुष का लक्षण है।^५ मनु ने विद्वज्जनों के लिए क्षमा को अनिवार्य माना है। वे कहते हैं कि विद्वान् क्षमा से ही शुद्ध-पवित्र होते हैं।^६ इसी तरह विष्णुपुराण में साधुओं का बल क्षमा निर्दिष्ट है।^७ श्रीमद्भागवत् में लिखा है कि स्वयं समर्थ होने पर क्षमा-भाव रखे।^८ महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में क्षमा को स्त्रियों तथा पुरुषों का भूषण बताया है।^९ संक्षेप में—

क्षमा यशः क्षमा धर्मः, क्षमायां विष्ठितं जगत् ।^{१०}

—क्षमा ही यश है, क्षमा ही धर्म है, क्षमा से ही चराचर जगत् स्थित है।

क्षमा के सम्बन्ध में बौद्ध दृष्टिकोण :

बौद्धधर्म, भारतीय आचार दर्शन का अभिन्न अंग है। इसमें भी क्षमा को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। श्रेष्ठ क्षमा की परिभाषा देते हुए संयुक्तनिकाय में बताया है, स्वयं बलवान् होकर भी दुर्बल की

१. महाभारत, आदिपर्व, ४२.६

२. वही, उद्योगपर्व, ३३.५२-५२.

३. श्रीमद्भागवतगीता, १०.५

४. वही, १०.३४

५. वही, १६. ३.

६. मनुस्मृति, ५.१०७

७. विष्णुपुराण, (१.१.२०)

८. श्री मद्भागवत, (६.५.४४)

९. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, ३३.७

१०. वही, ३३.९

बातें सहने को ही श्रेष्ठ क्षमा कहते हैं।^१ बुद्ध कहते हैं, सर्वप्रथम अपने विरोधी शत्रु पर ही क्षमा करनी चाहिये।^२ अपना अधिकार स्वीकार करने वालों को जो क्षमा नहीं करता है, वह भीतर ही भीतर क्रोध रखने वाला महाद्वेषी, वैर को और अधिक बांध लेता है।^३

धम्मपद में लिखा है क्षमा परम तप है।^४ सचमुच, क्षमा से बढ़कर अन्य कुछ नहीं है।^५ बुद्ध ने क्षमा को निर्वाण का कारण कहा है। धम्मपद में उल्लिखित है कि किसी से कटुवचन न बोलो। यदि बोलोगे, तो वह तुमसे वैसा ही कटु-वचन बोलेगा। प्रतिवाद दुःखदायक होता ही है। उसके बदले में तुम्हें दंड मिलेगा। टूटा हुआ कांशा जैसे निःशब्द रहता है, उसी तरह अगर तुम स्वयं चुप रहोगे तो तुम निर्वाणपद प्राप्त कर लोगे।^६

‘संयुक्त निकाय’ में क्षमा के सम्बन्ध में पूर्ण नामक एक बौद्धभिक्षु की कथा मिलती है। भगवान् बुद्ध ने पूर्ण को उपदेश दिया। तत्पश्चात् बुद्ध ने उससे पूछा—पूर्ण ! मेरे उपदेश को सुनकर तुम किस जनपद में विहार करोगे ?

भन्ते ! सूनापरान्त नाम का एक जनपद है, वहीं मैं विहार करूँगा।

पूर्ण ! सूनापरान्त के लोग बड़े चण्ड हैं। पूर्ण ! यदि वे तुम्हें गाली देंगे और डाटेंगे तो तुम क्या करोगे ?

भन्ते ! यदि सूनापरान्त के लोग मुझे गाली देंगे और डाटेंगे तो मुझे यह होगा—यह सूनापरान्त के लोग बड़े भद्र हैं, जो हाथ से मार-पीट नहीं करते हैं। भगवन् ! मुझे ऐसा ही होगा। सुगत ! मुझे ऐसा ही होगा।

पूर्ण ! यदि सूनापरान्त के लोग तुम्हें ढेला से मारें, तो तुम्हें क्या होगा ?

भन्ते ! यदि सूनापरान्त के लोग मुझे ढेला से मारेंगे तो मुझे यह होगा—यह सूनापरान्त के लोग बड़े भद्र हैं, जो मुझे लाठी से नहीं मारते।.....

१. संयुक्तनिकाय, १.११.४

२. विशुद्धिमग्ग, ६.८२

३. संयुक्तनिकाय, १.१.३५

४. धम्मपद, १६.४

५. विशुद्धिमग्ग, ९.२

६. धम्मपद, १०. ५-६

पूर्ण ! यदि सूनापरान्त के लोग तुम्हें लाठी से मारेंगे तो तुम्हें क्या होगा ?

भन्ते ! यदि सूनापरान्त के लोग मुझे लाठी से मारेंगे तो मुझे यह होगा—यह सूनापरान्त के लोग बड़े भद्र हैं, जो मुझे किसी हथियार से नहीं मारते हैं ।.....

पूर्ण ! यदि सूनापरान्त के लोग तुम्हें हथियार से मारें तो तुम्हें क्या होगा ?

भन्ते ! यदि सूनापरान्त के लोग मुझे हथियार से मारेंगे तो मुझे यह होगा—यह सूनापरान्त के लोग बड़े भद्र हैं, जो मुझे जान से नहीं मारते हैं ।.....

पूर्ण ! यदि सूनापरान्त के लोग तुम्हें जान मे मार डालें तो तुम्हें क्या होगा ?

भन्ते ! यदि सूनापरान्त के लोग मुझे जान से भी मार डाले तो मुझे यह होगा—भगवान् के श्रावक इस शरीर और जीवन से ऊबकर शरीर विसर्जन के लिए जल्लाद की तलाश करते हैं, यह मुझे बिना तलाश किये मिल गया । भगवन् ! मुझे ऐसा ही होगा । सुगत ! मुझे ऐसा ही होगा ।

पूर्ण ! ठीक है । तुम क्षान्त हो । इस धर्मशान्ति से युक्त तुम सूनापरान्त जनपद में निवास कर सकते हो ! अब तुम जहाँ चाहो, जाने की छूट है ।^१

उपर्युक्त प्रश्नोत्तर पूर्ण की उत्तम क्षमाशीलता का परिचय देते हैं । बुद्ध की दृष्टि में ऐसे सहिष्णु व्यक्ति ही धर्म का प्रचार और निर्वाण की प्राप्ति कर सकते हैं । बुद्ध स्वयं क्षमावन्त थे । आलवक यक्ष ने उनके साथ बहुत दुर्व्यवहार किया, लेकिन उन्होंने धैर्य रखा । अन्त में यक्ष का क्रोध बुद्ध की सहनशीलता से शमित हो गया था ।^२

क्षमा बनाम क्रोध :

क्षमा चित्त की एक वृत्ति है और क्रोध भी । किन्तु दोनों में एकरूपता नहीं है । एक सद्वृत्ति है, तो दूसरी दुष्वृत्ति है । प्रथम के द्वारा द्वितीय पर विजय प्राप्त की जाती है । अर्थात् क्षमा के द्वारा

१. द्रष्टव्य—(क) संयुक्तनिकाय, ३४.२.४.५

(ख) मज्झिमनिकाय, ३. ५. ३

२. सुत्तनिपात अट्ठकथा, —भगवान् बुद्ध और उनका धर्म, पृष्ठ ४५४

क्रोध पर विजय प्राप्त की जाती है। क्षमा वह ढाल है, जो दूसरों के क्रोध रूपी वार को सहन करती है। पर, क्या स्वयं के वार को सहने में वह सक्षम है ? नहीं। जिसमें क्रोध है, उसमें क्षमा नहीं है। जिसमें क्षमा है, उसमें क्रोध नहीं है। दोनों का प्रयोग दूसरों के लिए होता है। क्षमा भी दूसरों को की जाती है और क्रोध भी दूसरों पर। दोनों की अपनी-अपनी स्वतन्त्र सत्ता है। फिर भी आत्म-सिंहासन पर दोनों एक साथ नहीं बैठ सकते। दोनों में से किसी एक की स्थापना के लिए दूसरे का उत्थापन अनिवार्य है। अतः जहाँ क्रोध है, वहाँ क्षमा नहीं है। जहाँ क्षमा है, वहाँ क्रोध नहीं है।

जहाँ क्षमा के आलम्बन से अनेक भव्यात्माओं ने अपना उत्थान किया है, वहीं क्रोध के प्रभाव में आकर अनेक आत्माओं ने अपना पतन कर लिया था। यहाँ हम उनमें से कतिपय का संक्षिप्त उल्लेख करेंगे।

(१) आचार्य स्कन्दक के ५०० शिष्यों को पालक द्वारा कोल्हू में तेल की तरह पेरवा दिया गया। सभी शिष्य मृत्यु के क्षणों में परम क्षमाशील बने रहे। उनकी आदर्श क्षमाशीलता ने उन्हें मोक्ष-धाम प्रदान किया। पालक ने स्कन्दक को भी पेरवा दिया था। किन्तु स्कन्दक के मन में रोष पैदा हो गया। वे 'निदान' (संकल्प) पूर्वक मरे। उन्होंने एक देव के रूप में जन्म ग्रहण किया, और क्रोध के आवेश में उन्होंने १२ योजन दूर-दूर तक उसके सारे राज्य को भस्म कर डाला।^१ इस तरह जहाँ शिष्यों ने क्षमाशीलता से अपना-आत्म-कल्याण कर लिया, वहीं गुरु ने क्रोध के द्वारा अपनी आत्मा का पतन कर लिया।

(२) आचार्य चण्डरुद्र के मस्तिष्क का पारा बहुत चढ़ा हुआ था। विहार के समय चण्डरुद्र अपने शिष्य सोम मुनि के कन्धे पर बैठे हुए जा रहे थे। सोम कंकरीले पथ के कारण बराबर चल नहीं पा रहा था। चण्डरुद्र ने उसके सिर पर प्रचण्ड मुष्टि प्रहार किये और कठोर वचन भी कहे, परन्तु सोम के मन में आकुलता उत्पन्न न हुई। उनकी क्षमा-भावना श्रेष्ठ थी। उन्होंने चण्डरुद्र से पुनः पुनः क्षमा-

१. द्रष्टव्य—(क) उत्तराध्ययन चूर्णि, पृष्ठ ७३

(ख) मरणसमाधि, ४४३, ४६५

(ग) बृहत्कल्पभाष्य, ३२७२-४

याचना की। उसकी क्षमाशीलता ने ही उसे कैवल्य प्रदान किया।^१

(३) मुनि गजसुकुमार श्मशान में साधना कर रहे थे। सोमिल, जब उस मार्ग से जा रहा था तो उसने उन्हें मुनि-अवस्था में देखा। गजसुकुमार संसार से विरक्त हो, अपनी भात्री-पत्नी सोमा का त्याग कर मुनि बन गये थे। सोमा सोमिल की पुत्री थी। सोमिल मुनि पर कुपित हो गया। उसने मुनि के सिर के चारों ओर मिट्टी की अंगीठी बनायी और उसमें जलते हुए अंगारे रख दिये। मुनि अत्यधिक सहनशील थे। सहनशीलता की पराकाष्ठा के कारण ही मुनि के राग-द्वेष रूपी कर्म-ईर्ष्यन नष्ट हो गया। उन्होंने उसी रात्रि में मुक्ति प्राप्त करली।^२ गजसुकुमार का यह वृत्त हमें क्षमा की अच्छी शिक्षा देता है।

(४) राजा प्रसन्नचन्द्र ने अपने नाबालिग पुत्र को राज्य देकर मुनि-दीक्षा ग्रहण कर ली। एक दिन, जब वे कायोत्सर्ग कर रहे थे, उन्होंने सुमुख एवं दुमुख नामक दो व्यक्तियों का यह वार्तालापसुना—
“राजा प्रसन्नचन्द्र ने अपने छोटे पुत्र को राज्य-भार सौंपकर और संन्यास ग्रहण कर बड़ी भूल की है। उसके मन्त्रियों ने उसके पुत्र और परिवार की हत्या करने के लिए षडयन्त्र रचा है। राजकुमार अपना महल छोड़कर और कहीं चला गया।” इस चर्चा ने ध्यानस्थ तपस्वी को क्रुद्ध कर दिया। उन्होंने अपने विचारों में ही मन्त्रियों एवं शत्रुओं के विरुद्ध कठोर लड़ाई शुरू कर दी। बाद में जब उन्होंने अनुभव किया कि मेरा वर्तमान वास्तविक स्वरूप मुनि का है, राजा का नहीं। राजर्षि ने अपने क्रुद्ध संकल्पों एवं विचारों की आलोचना की। वे उपशम-गिरि पर चढ़े और सिद्ध-बुद्ध बन गये।^३

(५) एक बार साध्वी मृगावती तीर्थंकर महावीर के धार्मिक उपदेशों को श्रवण करने के लिए उनके स्थान पर गयी लेकिन वह

१. द्रष्टव्य—(क) उत्तराध्ययन चूर्णि, पृष्ठ ३१.

(ख) आवश्यक वृत्ति, पृष्ठ ५७७

(ग) बृहत्कल्पभाष्य, ७.६१०२-४

२. द्रष्टव्य—(क) अन्तकहृशांग, अनुच्छेद ६.

(ख) आवश्यक चूर्णि, ३५५, ३५८, ३६२, ३६४-५, ५३६.

३. द्रष्टव्य—(क) आवश्यक चूर्णि, भाग १, पृष्ठ ४५६.

(ख) निशीथ चूर्णि, भाग ५, पृष्ठ ६८.

(ग) स्थानांग वृत्ति, पृष्ठ ४४

अपने उपाश्रय में समय पर न लौट सकी। तीर्थंकर के दर्शनार्थ आए सूर्य और चन्द्र की साक्षात् उपस्थिति से वह दिन और रात्रि का भेद न पा सकी। देरी से पहुँचने पर प्रधान साध्वी चन्दना के द्वारा उसे उपालम्भ दिया गया। मृगावती ने चन्दना के उपालम्भों का कोई प्रतिकार नहीं किया; चुनवाप सुन लिया। मृगावती ने इतना अधिक पश्चाताप किया कि उसका कर्म-मल नष्ट हो गया और उसे उसी रात्रि में केवल ज्ञान प्राप्त हो गया।^१

(६) एकदा यादव राजकुमारों ने द्वैपायन ऋषि को सताया। क्रुद्ध हो उन्होंने द्वारिका शहर को जला डालने का निश्चय किया। मृत्यु के बाद, उन्होंने अग्नि कुमार देव के रूप में जन्म लिया और सारे शहर को जलाकर राख कर दिया।^२

(७) राजकुमार नागदत्त ने कम उम्र में ही संसार को त्याग दिया और संन्यास ग्रहण कर लिया। नागदत्त अपने पूर्व जन्म में एक नाग था। अतः रसना पर तो उसका नियन्त्रण था परन्तु भूख पर नहीं। उसे बहुधा भूख लगती थी और वह दिन भर खाया करता था। वह इतना सहनशील था कि उसने उन लोगों के प्रति भी कभी क्रोध का कोई चिह्न प्रगट न किया, जो उनके भोजन पर थूकते थे। एक दिन पर्व का दिवस था। नागदत्त के अन्य साथी-सन्तों के उपवास था। नागदत्त इस महान् पर्व-दिन में भी भिक्षा लाये, तो अन्य तपस्वी सन्तों ने क्रोधावेश में उनके भिक्षा-पात्र में थूक दिया। नागदत्त ने उनसे क्षमा-याचना की कि मेरा अपराध क्षमा करें जो मैं आपके थूकने के लिए थूकदान / पात्र न ला सका। नागदत्त ने अपनी सहनशीलता के द्वारा ही मुक्ति प्राप्त की थी।^३ (यह दृष्टान्त 'कूरगडूक केवली' के नाम से भी प्रसिद्ध है।) इस दृष्टान्त से स्पष्ट है कि क्षमा की उत्तम आराधना ही सर्वश्रेष्ठ तप है।

क्षमा का शत्रु—क्रोध :

क्षमा, आत्मा का स्वाभाविक गुण है, जबकि क्रोध, आत्मा का वैभाविक गुण है। क्रोध आत्मघातक विकार है। क्रोध की वृत्ति आत्मा

१. द्रष्टव्य—(क) व्यवहारसूत्रवृत्ति (मलयगिरि कृत), भाग ३, पृ० ३४.

(ख) आवश्यक चूर्ण, भाग १, पृष्ठ ६१५.

२. द्रष्टव्य—अन्तकृद्दशांग, अनुच्छेद २,

३. द्रष्टव्य—(क) दशाश्रुतस्कन्ध चूर्ण, पृष्ठ ४१-२

(ख) आवश्यक नियुक्ति, १२८० वां पद्य

को स्वभाव-दशा से विभाव-दशा में ले जाती है, और व्यक्ति को जन्म-मरण की श्रृंखला में आबद्ध कर देती है।

क्रोध सामाजिक और आध्मात्मिक दोनों दृष्टिकोणों से हानिकर है। सामाजिक दृष्टि से क्रोध पारस्परिक सद्भाव का विनाशक है, तो आध्मात्मिक दृष्टि से आत्मा के निज-गुण समता का विघातक है। हमारे मनीषी कहते हैं—

क्रोधो मूलमनर्थानां, क्रोधः संसारवर्द्धनः ।

धर्मक्षयकरः क्रोधस्तस्मात्क्रोधं विवर्जयेत् ॥^१

अर्थात्—क्रोध अनर्थों का मूल, संसारवर्द्धक और धर्मक्षयकर है। अतः क्रोध का विवर्जन करना चाहिये।

और भी—

क्रोधो नाशयते धैर्यं, क्रोधो नाशयते श्रुतम् ।

क्रोधो नाशयते सर्वं नास्ति क्रोधसमोरिपुः ॥^२

अर्थात्—क्रोध धैर्य और श्रुत (ज्ञान) का नाश करता है। वस्तुतः वह सब कुछ नाश कर देता है। अतः क्रोध के समान कोई शत्रु नहीं है।

सचमुच, क्रोध अनुचित है। क्षुद्र व्यक्ति ही क्रोध करते हैं। अच्छे व्यक्ति क्रोध नहीं करते। उन्हें तो उससे घृणा होती है। जिस प्रकार जानकार व्यक्ति विषधर को अपने गले का हार बनाना लाभदायक नहीं समझता, उसी प्रकार विद्वत् जन क्रोध को प्रश्रय नहीं देते। क्रोध से आवेशित व्यक्ति सदैव गुस्सैला / विषैला रहता है। उसकी वृत्ति तामसिक होती है। वह अपने चित्त के सन्तुलन को खो बैठता है। यह अपने पर नियन्त्रण भी नहीं रख पाता, बात-बात में आपे से बाहर हो जाता है।

क्रोध का शमन क्रोध से नहीं होता। क्रोध के शमन के लिए अपरिहार्य रूप से आवश्यकता होती है क्षमा की। क्रोध में ऊष्णता होती है, तो क्षमा में शीतलता। क्रोध की ऊष्णता क्षमा की शीतलता से शान्त होती है। शान्त पुरुष ही क्षमावान् होता है।

क्रोध, मान, माया और लोभ—ये चार कषाय हैं।^३ ये राग रूपी जंजीर की चार कड़ियाँ हैं। चारों एक-दूसरे से आबद्ध हैं। एक का क्षय होने पर शेष भी अनुक्रमशः प्रक्षीण हो जाती हैं। शास्त्र कहते

१. उद्धृत—संस्कृत श्लोक-संग्रह, ५३.१. २. वही, ५३.५

३. स्थानांग, चतुर्थ ठाणा, उद्देशक ४, सूत्र ३३९.

हैं—ये चारों हानिकारक हैं । क्रोध प्रीति को नष्ट करता है तो मान विनय को नष्ट करता है । माया मैत्री को नष्ट करती है तो लोभ सत्र कुछ नष्ट करता है ।^१ इसलिए क्षमा से क्रोध पर विजय प्राप्त करें । मार्दव (नम्रता) से मान को जीतें । आर्जव (ऋजुता) से माया पर विजय प्राप्त करें । सन्तोष से लोभ को पराजित करें ।^२ इनकी आंशिक विद्यमानता भी क्षति पहुँचाने वाली होती है । ऋण को थोड़ा, घाव को छोटा, आग को तनिक और कषाय को अल्प मान, विश्वस्त होकर नहीं बैठ जाना चाहिए । क्योंकि ये थोड़े भी बढ़कर बहुत हो जाते हैं ।^३

अतएव क्रोध त्याज्य है । जब तक क्रोध-कषाय मनुष्य पर अपना प्रभुत्व जमाये रहेगा, तब तक के लिए उसके चित्त में दुर्भावना और द्वेष की खिड़की खुली रहेगी । जब तक जीवन में दुर्भावना और द्वेष है, तब तक अविवेकता भी है, अभिमान भी है, तिरस्कार और भय भी है । इस तरह क्रोधी मनुष्य की सारी सद्वृत्तियाँ कुण्ठित हो जाती हैं । उसके शुभ परिणाम सर्वथा नष्ट हो जाते हैं । गम्भीरता, शान्ति, विवेक, आनन्द, नीति, क्षमता और विचार-शक्ति सभी से वह शून्य-सा हो जाता है । कविवर रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है—

भाग्यहीन जब किसी हृदय में क्रोध उदय होता है ।
बढ़ती है पाशविक शक्ति आतिरक बल क्षय होता है ।
क्रोध, दया सुविचार न्याय का मार्ग भ्रष्ट करता है ।
अपना ही आधार प्रथम वह दुष्ट नष्ट करता है ।
क्रोध तुम्हारा प्रबल शत्रु है, बसा तुम्हारे घर में ।
हो सकते हो उसे जीतकर, विजयी तुम जग भर में ।^४

यहाँ हमने क्रोध के सामान्य स्वरूप पर प्रकाश डाला है । उसके विवक्षितार्थ को अधिक स्पष्ट करने के लिए विस्तार की अपेक्षा है । आगामी पृष्ठों में हम इस पर थोड़े विस्तार से चर्चा करेंगे ।

क्रोध के प्रकार :

क्रोध चतुःप्रतिष्ठित होता है—१. आत्मप्रतिष्ठित, २. पर-प्रतिष्ठित, ३. तदुभयप्रतिष्ठित और ४. अप्रतिष्ठित ।^५ आत्म-प्रतिष्ठित क्रोध स्वविषयक होता है और अपने ही निमित्त से उत्पन्न होता है ।

१. दशवैकालिक, ८. ३७

२. वही, ८. ३८.

३. विशेषावश्यक भाष्य, १३१०

४. पथिक, पृष्ठ ५८.

५. स्थानांग, ४. १. ७६.

परप्रतिष्ठित क्रोध पर-विषयक होता है तथा दूसरे के निमित्त से उत्पन्न होता है। तदुभय प्रतिष्ठित क्रोध स्व-पर विषयक होता है और दोनों के निमित्त होता है। अप्रतिष्ठित क्रोध केवल क्रोध-वेदनीय के उदय से उत्पन्न होता है। बाहरी कारणों से उत्पन्न नहीं होता। क्रोध अनेक प्रकार का होता है। यथा—

१. **अनन्तानुबन्धी-क्रोध**—इस क्रोध का अनुबन्ध और परिणाम अनन्त होता है। जैसे पर्वत में दरार पड़ने पर उसका मिलना दुष्कर है, उसी प्रकार अनन्तानुबन्धी क्रोध किसी उपाय से शान्त नहीं होता है।

२. **अप्रत्याख्यानी क्रोध**—विरति-मात्र का अवरोध करने वाला क्रोध अप्रत्याख्यानी क्रोध है। जिस प्रकार सूखे सरोवर आदि में मिट्टी के फट जाने पर दरार पड़ जाती है, लेकिन वर्षा होने पर पुनः मिल जाती है, उसी प्रकार जो क्रोध विशेष परिश्रम से शान्त होता है, वह अप्रत्याख्यानी क्रोध है।

३. **प्रत्याख्यानी क्रोध**—सर्व-विरति का अवरोध करने वाला प्रत्याख्यानावरण क्रोध है। जैसे धूल में रेखा अंकित करने पर कुछ समय बाद हवा से वह रेखा समाप्त हो जाती है, वैसे ही जो क्रोध कुछ उपाय से शान्त हो, वह प्रत्याख्यानी क्रोध है।

४. **संज्वलन क्रोध**—यथाख्यात चरित्र का अवरोध करने वाला क्रोध संज्वलन क्रोध है। जिस तरह जल में खींची रेखा खींचने के साथ ही मिट जाती है, उसी तरह किसी कारण से उदय में आया हुआ जो क्रोध तत्काल शान्त हो जाता है, संज्वलन क्रोध है।

५. **आभोग निर्वर्तित क्रोध**—क्रोध के फल को जानते हुए भी किया गया क्रोध आभोग निर्वर्तित कहलाता है। यह क्रोध परिस्थिति विशेष केवल हित-शिक्षा के उद्देश्य से होता है। पुष्ट कारण होने पर यह सोचकर कि ऐसा किये बिना इसे शिक्षा नहीं मिलेगी, जो क्रोध किया जाता है, वह आभोग निर्वर्तित क्रोध है।

६. **अनाभोग निर्वर्तित क्रोध**—यह क्रोध बिना जाने-बूझे किया जाता है। इसमें व्यक्ति को स्थिति की जानकारी नहीं होती है। जब गुण-दोष का विचार किये बिना या क्रोध के विपाक को न जानते हुए क्रोध किया जाता है, वह अनाभोग निर्वर्तित क्रोध है।

७. **उपशान्त क्रोध**—क्रोध की अनुदयावस्था उपशान्त क्रोध की

अवस्था है। यह क्रोध सत्ता में होता है, लेकिन उदय में नहीं होता है।

द. अनुपशान्त क्रोध—उदय-अवस्था में रहा हुआ क्रोध अनुपशान्त क्रोध है।

इस तरह हम देखते हैं कि क्रोध आठ प्रकार का होता है। स्थानाङ्ग सूत्र में इन आठों क्रोधों का नामोल्लेख हुआ है।^१

क्रोध की उत्पत्ति के हेतु :

‘क्रोध’ शब्द की व्युत्पत्ति ‘क्रुध्’ धातु के साथ ‘घञ्’ प्रत्यय संलग्न करने पर होती है। इसका शाब्दिक अर्थ है, ‘कुपित होना’। भारतीय साहित्य में क्रोध के लिए कोप, आवेश, आक्रोश, रोष आदि शब्द भी व्यवहृत हुए हैं। समवायांग सूत्र में क्रोध के दस नाम निर्दिष्ट हैं—१. क्रोध, २. कोप, ३. रोष, ४. दोष, ५. अक्षमा, ६. संज्वलन, ७. कलह, ८. चाण्डिक्य, ९. भंडन और १०. विवाद।^२

क्रोध एक उद्वेगजनक मनोविकार है। इसके कारण मनुष्य अपना विवेक खो देता है। यह अनुचित, अन्यायपूर्ण तथा हानिकारक कार्य या बात को देख-मुनकर उत्पन्न होता है। जिसके कारण यह उग्र तथा तीक्ष्ण मनोविकार उत्पन्न होता है, व्यक्ति उसे कुछ कठोर दंड देने की इच्छा करता है अर्थात् उससे बदला लेना चाहता है। भगवद्गीता के अनुसार जो अभिलाषा पुरी नहीं होती है, वही रजोगुण के कारण बदलकर ‘क्रोध’ बन जाती है।^३ साध्वी मणिप्रभाश्री क्रोध के उद्भव का कारण बताती हुई कहती हैं कि कोई भी अपेक्षा जब अपेक्षा में बदलती है, तो हृदय में क्रोध जन्म लेता है।^४ ‘स्थानांग’ में क्रोध की उत्पत्ति के चार कारण बताये हैं। वे हैं—१. क्षेत्र के निमित्त से, २. वस्तु के निमित्त से, ३. शरीर के निमित्त से और ४. उपधि के निमित्त से।^५ इसी ग्रन्थ में क्रोधोत्पत्ति के कारणों पर प्रकाश डालते हुए लिखा गया है कि अमुक व्यक्ति ने मनोज्ञ तथा अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध का अपहरण किया है, करता है और करेगा तथा उपहृत किये हैं, करता है और करेगा—ऐसा होने पर क्रोध की उत्पत्ति होती है।^६

१. स्थानाङ्ग सूत्र, ४. ८४, ८८

२. समवायांग, ५२.

३. गीता, २. ६३

४. शान्ति-पथ, पृष्ठ ४७

५. स्थानांग, ४. ३

६. वही, १०-७

क्रोध की उत्पत्ति के हेतुओं के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक तथ्य भी अवलोक्य हैं। मनोवैज्ञानिकों ने क्रोध के जन्म-स्थान का पता लगा लिया है। क्रोध का जन्म तार्किक बुद्धि और चेतन मस्तिष्क से होता है। वैज्ञानिकों का कथन है कि चेतन मस्तिष्क (सैरेब्रियन कोरटेक्स) के काफी नीचे 'आदिममस्तिष्क' है, वही क्रोध का उत्पत्ति-स्थान है। यह आदिम हिस्सा जब किसी कारण से उत्तेजित हो जाता है, तो क्रोध का जन्म होता है।

क्रोध के उत्पन्न होने के अनेक कारण हो सकते हैं। इन्हें हम निम्न प्रकार से विभाजित कर सकते हैं—

१. **दूषित वचन**—बुरे वचनों या अपशब्दों को सुनकर मनुष्य क्रोधित हो जाता है। शास्त्रों में इसके बहुत-से उदाहरण मिलते हैं। महाभारत में दुर्योधन के दुर्वचनों से ही कृष्ण कुपित हुए थे। पूर्व पृष्ठों में हम पढ़ चुके हैं कि राजा श्रेणिक के दुर्मुख एवं सुमुख नामक दूत के वचनों से राजषि प्रसन्नचन्द का क्रोध आ गया था।⁴ हमें भी कोई व्यक्ति कठोर वचन कहता है, तो हमारे में भी क्रोध आविर्भूत हो जाता है। अतः क्रोध की उत्पत्ति में एक कारण दूषित वचन है।

२. **अनुचित व्यवहार**—अच्छा व्यवहार स्नेह बढ़ाता है। बुरा व्यवहार क्रोध को जन्म देता है। पुत्र का बुरा व्यवहार पिता के क्रोध का कारण बनता है। कर्मचारी का खराब बरताव अधिकारी के क्रोध का हेतु है। भारतीय ग्रन्थों में भी अनुचित व्यवहार से क्रोध उत्पन्न होने के प्रसंग उल्लेख हैं। जैसे—दुर्वासा ऋषि शकुन्तला के गृह-द्वार पर पहुँचे। शकुन्तला ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। ऋषि उसके इस व्यवहार पर कुपित हो गये। उन्होंने उसे अभिशाप दे दिया था।¹ इसी तरह द्रौपदी ने नारद ऋषि के आगमन पर उनका सत्कार नहीं किया, जिस पर क्रुद्ध होकर उन्होंने उसका अपहरण करवा दिया था।² यादवकुमारों के अनुचित व्यवहार पर द्वैपायन ऋषि कुपित हो गये, जो कि द्वारका नगरी के विनाश का कारण बना। इस प्रसंग का उल्लेख हम पूर्व में कर आए हैं। अतः यह स्पष्ट है कि अनुचित व्यवहार से भी क्रोध का जन्म होता है।

३. **विचारों या रुचियों में पार्थक्य**—सबके प्रति आत्मवत् दृष्टि से क्षमा प्रगट होती है। जबकि परायेपन का भाव क्रोध की उत्पत्ति का कारण होता है। विचारों या रुचियों में भेद होने से भी क्रोध

१. द्रष्टव्य—अभिज्ञान शाकुन्तलम्, ४.४ २. द्रष्टव्य—अन्तकूद्शांग, ५.१

उत्पन्न होता है। पति-पत्नी, सास-बहू, पिता-पुत्र आदि में विचार-भेद या रुचि-भेद क्रोध का कारण बन जाता है।

४. **सन्देह**—सन्देह एक मानसिक अवस्था है। इसमें व्यक्ति किसी चीज को ठीक तरह से पहचान या समझ नहीं पाता। सन्देह भी क्रोध का कारण बनता है। जैसे—पंजाब काण्ड में विदेशी शक्ति का हाथ था, ऐसा भारत को सन्देह है। अतः भारत सन्देह के आधार पर ही दूसरे देशों पर आक्षेप करता है। जैनागमों में इसी तरह का एक प्रसंग है कि मैतार्यमुनि आहार-प्राप्ति हेतु एक स्वर्णकार के घर पहुँचे। स्वर्णकार घर में आहार लाने गया। इधर से उसके स्वर्णयवों को एक पक्षी निगलकर उड़ गया। स्वर्णकार को सन्देह हुआ कि मुनि ने यह चौर्यकर्म किया है। उसे क्रोध आ गया और मुनि को प्रताड़ा, उत्कट कष्ट दिये।^१ इस प्रकार सन्देह से भी क्रोध प्रकट होता है।

५. **स्वार्थसिद्धि में अवरोध**—मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है—
चाहो जो अपने लिए, वही और के अर्थ।
केवल स्वार्थ विचारना, है अत्यन्त अनर्थ ॥^२

सचमुच, स्वार्थपूर्ति अनर्थ मूलक है। सारा संसार स्वार्थी है। सभी स्वार्थपूर्ति में निमग्न हैं। स्वार्थ-परायण व्यक्ति अपनी अपेक्षाओं की उपेक्षा सहन नहीं कर सकता। उसकी अपेक्षा की उपेक्षा क्रोध की अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करती है। रामायण की यह बात प्रसिद्ध है कि जटायु ने रावण की स्वार्थ-सिद्धि में रंकावट डालने का प्रयास किया, तो रावण कुपित हो उठा। 'क्षमा बनाम क्रोध' शीर्षक के अन्तर्गत यह निर्दिष्ट है कि स्वार्थ पूर्ति में अवरोध उपस्थित होने पर सोमिल ब्राह्मण ने गजसुकुमार मुनि पर क्रोध किया था।

इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि दूषित वचन, अनुचित व्यवहार, विचारों या रुचियों में पार्थक्य, सन्देह और स्वार्थसिद्धि में अवरोध होना क्रोधोत्पत्ति के प्रमुख हेतु हैं।

क्रोध की परम्परा की वृद्धि का कारण :

अग्नि प्रज्वलित होती है, किन्तु यदि उसे ईंधन न मिले तो वह बुझ जाती है। वह उत्कृष्टतम तीन दिन तक जल सकती है। इससे अधिक उसका जीवन नहीं हो सकता, किन्तु यदि ईंधन प्राप्त होता रहे तो वह सुदीर्घ काल तक दहकती रहती है। क्रोध के सम्बन्ध में

१. द्रष्टव्य—आवश्यकनिष्ठ ४८, ६६, ८७०-१. २. काबा और कार्बला.

भी यही बात चरितार्थ होती है। क्रोध एक चिनगारी है। चिनगारी को घास का समागम मिलता है, तभी वह भड़कती है। अन्यथा चिनगारी का अस्तित्व कितने समय का ! वह आविर्भूत होती है और तत्काल तिरोहित हो जाती है। क्रोध की परम्परा भी तभी बढ़ती है, जब किसी को उसके विरोधी की ओर से क्रोध संवर्धक अवसर प्राप्त हो। यदि ऐसा नहीं होता है, तो क्रोध अधिक समय तक टिक नहीं पाता है; जैसे एक व्यक्ति मुझ पर क्रोधित हो रहा है। वह मुझ पर आघात या आक्षेप करता है। किन्तु मैं उसकी प्रतिक्रिया में प्रत्याघात या प्रत्याक्षेप नहीं करता, तो क्रोध की परम्परा में वृद्धि कैसी होगी ? क्रोध समाप्त हो जाएगा। क्रोध की वृद्धि विपक्षी के प्रतिक्रिया से ही सम्भव है। कवि छत्रमल ने लिखा है—

देते गाली एक हैं, उलटे गाली अनेक।

जो तू गाली दे नहीं, तो रहे एक की एक ॥^१

इस सम्बन्ध में भगवान् बुद्ध का एक वृत्त प्राप्त होता है। एकदा बुद्ध विचरण करते हुए राजगृह में आए। भारद्वाज ब्राह्मण ने जब सुना कि भारद्वाज गोत्र ब्राह्मण श्रमण गौतम के पास दीक्षित हो गया है, क्रुद्ध और खिन्न हो बुद्ध के पास आया। और खोटी-खोटी बातें कहते हुए भगवान् को फटकार बताने और गालियाँ देने लगा। उसके ऐसा कहने पर, भगवान् उस खोटे-मुँह भारद्वाज से बोले—ब्राह्मण ! क्या तुम्हारे यहाँ कोई दोस्त-मुहीब या बन्धु-बान्धव पहना आते हैं या नहीं ?

हाँ गौतम !.....आते हैं।

ब्राह्मण ! क्या तुम उनके लिए खाने-पीने की चीजें भी तैयार करवाते हो ?

हाँ गौतम ! कभी-कभी उनके लिए खाने-पीने की चीजें भी मैं तैयार करवाता हूँ।

ब्राह्मण ! यदि वे किसी कारण से उन चीजों का उपयोग नहीं कर सकते हैं, तो वे चीजें किसको मिलती हैं ?

गौतम !.....वे मुझ ही को मिलती हैं ?

ब्राह्मण ! इसी तरह जो तुम कभी भी खोटी बातें न कहने वाले मुझको खोटी बातें कह रहे हो; कभी भी क्रुद्ध नहीं होने वाले मुझ पर क्रुद्ध हो रहे हो; कभी किसी को ऊँचा-नीचा न कहने वाले मुझको

ऊँचा-नीचा कह रहे हो—इसे मैं स्वीकार नहीं करता। तो ब्राह्मण ! यह बातें तुम ही को मिल रही है। ब्राह्मण ! जो खोटी बातें कहने वाले को खोटी बातें कहता है, क्रुद्ध होने वाले पर क्रुद्ध होता है, ऊँचा-नीचा कहने वाले को ऊँचा-नीचा कहता है—वह आपस का खिलाना-पिलाना कहा जाता है। मैं तुम्हारे साथ आपस का खिलाना-पिलाना नहीं करता। तुम्हारे दिए का मैं उपयोग ही नहीं करता। तो ब्राह्मण ! यह बातें तुम ही को मिल रही है, तुम ही को मिल रही है।^१

क्रुद्ध नर के लक्षण :

कौन व्यक्ति कैसा है ? यदि मुझसे ऐसा प्रश्न पूछा जाए तो मैं कहूँगा कि 'जब वह व्यक्ति जिसके बारे में प्रश्न पूछा गया है, क्रोध में हो, तो इस प्रश्न का उत्तर वह स्वयं दे देगा। व्यक्ति का मूल्यांकन उसके व्यक्तित्व पर आधारित है। क्रोध उसके व्यक्तित्व को परखने के लिए एक अवसर प्रदान करता है। क्रोध में व्यक्ति अपने अन्दर छिपे उन भावों को व्यक्त करता है, जो अधिकांशतः विकृत एवं असंस्कृत होते हैं। अतः उनका आन्तरिक संस्कार कैसा है, वह उन भावों के साथ प्रगट हो जाता है। क्रोध आठ दुर्गुणों को जन्म देता है—

१. चुगली, २. दुःसाहस, ३. वैर, ४. ईर्ष्या, ५. दूसरे के दोषदर्शन, ६. अयोग्य धन का विनिमय, ७. कठोर वचन, ८. क्रूर बरताव।^२

क्रोध में व्यक्ति अपने आपका विस्मरण कर बैठता है। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। उसका खून खौलने लगता है। उनकी आँखें रक्तवर्णी हो जाती हैं। उसके मुख पर रौद्रता प्रतिबिम्बित होती है। उसके शारीरिक अवयवों की गति विचित्र-सी हो जाती है। ऐसा एहसास होता है, मानो उसकी देह ने आग पकड़ ली हो। अधिक क्या, वह मानुषिक आकृति में भी पाशविक प्रकृति से युक्त होता है। क्रोधित नर के लक्षणों को स्पष्ट करते हुए कहा गया है—

भूभंगभंगुरगुरमुखो विकरालरूपो, रक्तैक्षणो दशनरीडितदंतवासाः ।
त्रासंगतोति मनुजो जनान्द्वेषः, क्रोधेन कम्पिततनुर्भवति राक्षसो वा ॥^३

१. संयुक्तनिकाय, ७.१.२--३

२. मनुस्मृति, ७. ४८

३. संस्कृत श्लोक संग्रह, ५४.१६

अर्थात् क्रोध के कारण भाँए वक्र हो जाने से मुख भी वक्र हो जाता है। आकृति भयावह हो जाती है। नेत्र लाल हो जाते हैं। व्यक्ति अपने दाँतों से ओष्ठ चबाने लगता है। वह क्रोध से पीड़ित होकर लोक में निन्दा का पात्र बनता है। उसका सारा शरीर कम्पायमान होने लगता है। ऐसा लगता है, मानो पृथ्वी पर राक्षस उतर आया। पुनश्च—

क्रोध में आंखे होती लाल, क्रोध में मुँह होता विकराल ।
 क्रोध में खूब बजाता गाल, क्रोध में सभी बिगड़ती चाल ॥
 क्रोध में नीच डालता बाल, क्रोध कर देता है बेहाल ।
 क्रोध से जर्दो आता काल, क्रोध देता नरकों में डाल ॥
 क्रोध में जलते सारे अंग, क्रोध में सत्य न रहता संग ।
 क्रोध में हो जाती मति भंग, क्रोध में मिटती सभी उमंग ॥
 क्रोध से कांप उठती सब देह, क्रोध में निट जाता सब नेह ।
 क्रोध से मिटता सद्ब्यवहार, क्रोध में स्वयं मारता मार ॥
 क्रोध में खोता सारी लाज, क्रोध में कुए गिरता भाज ।
 क्रोध में गले बांधता फांस, क्रोध में करता आत्मविनाश ॥
 क्रोध में गुरुजन को ललकार, क्रोध में देता है दुत्कार ।
 क्रोध में उन्हें मारता मार, क्रोध में बिसराता सब प्यार ॥^१

इस तरह हम देखते हैं कि क्रोध से मनुष्य में अनेक विकृत लक्षण प्रगट होते हैं।

क्रोध-अग्नि—स्व-पर दाहक :

क्रोध विलक्षण अग्नि है। अन्य अग्नियाँ इससे भिन्न हैं। वे उसी को जलाती हैं, जो उसके समीप जाता है। जब कि क्रोध रूपी अग्नि स्वयं क्रोधी को और क्रोध के विषय दोनों को ही जलाती है। मनुष्य दूसरे पर क्रोध करता है। वह दूसरों को जलाने के लिए आग जलाता है। किन्तु स्वयं उससे अछूता नहीं रहता है। दूसरों के लिए गड्ढा खोदने वाला पहले स्वयं गिरता है। क्रोध में व्यक्ति भूल जाता है कि वह जिसकी झोपड़ी में आग लगा रहा है, उसी से सटी हुई मेरी झोपड़ी भी है। चीनी कहावत है कि The fire you kyndle for your enemy often burns yourself more than him. अर्थात् जिस अग्नि को तुम शत्रु के लिए जलाते हो, वह बहुधा तुम्हें ही अधिक जलाती है। इसीलिए डॉ० हरिवंश राय

१. उद्धृत—आनन्द प्रवचन, भाग ६, पृष्ठ ३११.

‘बच्चन’ ने उत्तप्त न बनने की प्रेरणा दी है। उनका कथन है—
 इतने मत उतस बनो। मेरे प्रति अन्याय हुआ है,
 ज्ञात हुआ मुझको जिस क्षण, करने लगा अग्नि-आनन हो,
 गुरु गर्जन, गुरुतर तर्जन—शीश हिलाकर दुनियाँ बोली,
 पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह, इतने मत उत्तप्त बनो।^१

क्रोध की अग्नि भयंकर होने पर दावानल का रूप ग्रहण कर लेती है। क्रोध रूपी अग्नि को प्रतिक्रिया रूपी काष्ठ मिलता रहे, तो वह फैलती ही जाती है। तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है, ‘केहि कर हृदय क्रोध नहीं दाहा?’^२ अर्थात् क्रोध ने किसके हृदय को नहीं जलाया! क्रोध सबको जलाता है। लेकिन दूसरों की अपेक्षा स्वयं को अधिक जलाता है। ‘क्रोधश्चेदनलेन किम्?’ इस नीति वाक्य के अनुसार जिस व्यक्ति ने अपने मन में क्रोधाग्नि को सुलगा रखी है, उसे चिता से कोई प्रयोजन नहीं होता। वह बिना चिता के ही जल जाएगा।

संक्षेप में, क्रोधाग्नि स्व-पर दाहक है। वह सर्वप्रथम अपने स्वामी को जलाता है, और बाद में दूसरों को। महोपाध्याय समयसुन्दर के शब्दों में—

क्रोध करंता तप जप कीधा, न पड़इ कांड ठाम।

आप तपे पर ने संतापे, क्रोध सुं केहो काम ॥^३

क्रोध का दमन तथा प्रगटन—दोनों घातक :

अपेक्षा की उपेक्षा क्रोध का कारण है। इसीलिए महान् व्यक्ति दूसरों से अपेक्षा नहीं रखते। उनकी अपेक्षाएँ स्वयं से ही होती हैं। अतः उन्हें क्रोध का सामना नहीं करना पड़ता। किन्तु अधिकांश लोग दूसरों से अपेक्षा रखते हैं। जब उनकी अपेक्षा उपेक्षा में बदलती है, तो क्रोध का आगमन हो जाता है।

क्रोध के उत्पन्न होने पर दो ही स्थिति होती है—या तो वह दमित हो जाता है या फिर प्रगट हो जाता है। दोनों क्षति पहुँचाने वाले हैं। मन में क्रोध का दबा रहना भी बुरा है और उसका प्रगट होना भी। क्रोध का दमन भावी विस्फोट का सूचक है, तो क्रोध का तत्काल प्रगटन संघर्ष की जड़ों को सुदृढ़ करता है।

जिस व्यक्ति ने अपने क्रोध को दमित कर रखा है, वह

१. अभिनव सोपान, पृ० १५८. २. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दोहा ७०

३. समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जली, क्षमा छत्तीसी, (३२)

चाहे जितना अपना विकास कर ले, परन्तु अन्त में उसका पतन अवश्यमेव है। जो व्यक्ति क्रोध को मन में दमित किये हुए साधना के क्षेत्र में आगे चरण बढ़ाता है वह 'उपशान्तकषाय' नामक ग्यारहवें 'गुणस्थान' अर्थात् आध्यात्मिक विकास की एक उच्च अवस्था पर आरोहण करके भी पतित हो जाता है। सचमुच, दमित क्रोध राख में छिपी अग्नि के समान है, जो हवा के संयोग से राख के हटते ही पुनः प्रगट हो जाती है। इसी दृष्टि से किसी के प्रति हृदय में क्रोध लिए रहने की अपेक्षा उसे प्रगट कर देना अधिक अच्छा है, जैसे देर तक सुलगने की अपेक्षा पल भर में जल जाना। इस सम्बन्ध में विलियम ब्लेक ने अपना अनुभव निम्न शब्दों में लिखा है—

I was angry with my friend;
I told my wrath, my wrath did end.
I was angry with my foe;
I told it not, my wrath did grow :

(—A Poison Tree)

अर्थ—मैं अपने मित्र पर क्रोधित था। मैंने उस पर अपना क्रोध प्रगट कर दिया। और मेरे क्रोध का अन्त हो गया। मैं अपने शत्रु पर क्रोधित था। मैंने अपना क्रोध प्रगट नहीं किया। और मेरा क्रोध बढ़ता रहा।

दमित क्रोध स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक है। इसकी विस्तृत चर्चा हम अगले पृष्ठों पर करेंगे। यहाँ इतना अवश्य उल्लेखनीय है कि क्रोध का प्रगटन स्वास्थ्य के लिए उतना हानिकर नहीं है, जितना उसका दमन। दमित क्रोध से ही शारीरिक एवं मानसिक तनाव तथा आकुलता बढ़ती है और यह स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। क्रोध आता है, प्रगट होकर वह विरेचित हो जाता है। यदि दबा रहता है तो अधिक विकृति का कारण बनता है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि क्रोध का प्रगटन अच्छा है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहता है। इसके लिए उसे समाज के साथ मधुर सम्बन्ध बनाए रखना अनिवार्य है। क्रोध की अभिव्यक्ति उन सम्बन्धों को क्षति पहुँचाती है। अभिव्यक्त और दमित क्रोध कितना भयंकर होता है, इसका विवेचन करते हुए एक आचार्य ने कहा है—

उत्तमे तु क्षणं कोपो, मध्यमे घटिकाद्वयम् ।
अधमे स्यादहोरात्रं, चाण्डाले मरणान्तकः ॥

अर्थात् क्षणभर का क्रोध उत्तम है । दो घड़ी का क्रोध मध्यम है । रात-दिन रहने वाला क्रोध अधम है । और मृत्युपर्यन्त क्रोध को मन में लिए रहना चाण्डालकर्म है ।

क्रोध : विवेक का विनाशक :

मस्तिष्क रूपी दीपक विवेक रूपी प्रकाश से आलोकित होता है । विवेक से ही शुभाशुभ-विचार की योग्यता प्राप्त होती है । विवेकवान् ही अच्छे-बुरे को पहचान सकता है । क्रोध इस विवेक का विनाशक है । क्रोध रूपी हवा का झोंका विवेकरूपी प्रकाश को समाप्त करता है । क्रोध में विवेक काम नहीं करता । क्रोधी व्यक्ति की विचार-शक्ति कुण्ठित हो जाती है । उसके विवेकरूपी नेत्र बन्द हो जाते हैं, केवल मुख-द्वार खुला रहता है जिससे अग्नि की लपटें निकलती रहती हैं । उसका चित्त अस्थिर हो जाता है । फलस्वरूप विवेक दूर भाग जाता है और उसका साथी अविवेक आकर मनुष्य को अकार्य में प्रवृत्त करता है । उसका क्रोध एक ऐसी वह्नि का रूप ग्रहण कर लेता है, जो चिरकाल से अभ्यस्त यम, नियम, तप आदि को क्षण भर में भस्म कर देती है । ऐसी दशा में क्रोधरूपी भूकम्प को जो हमारे व्यक्तित्व को विचलित कर देता है शान्त करना दुष्कर है । कारण वह बहरा होता है । वह किसी की सुनता नहीं है । अपनी ही कहता है । क्रोध की प्रारम्भिक अवस्था में व्यक्ति उस पर नियन्त्रण रख सकता है । किन्तु अन्त में वह उसी के वशीभूत हो जाता है । यानि पहले नाविक नौका चलाता था और बाद में नौका नाविक को चलाती है । यह हास्यास्पद स्थिति है । यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने उचित ही कहा है कि क्रुद्ध व्यक्ति उन व्यक्तियों की तरह है, जो अपने सिर के बल पर खड़े हैं । वे सभी बातें उलटी दिशा में सोचते हैं, देखते हैं । यूनानी दार्शनिक प्ल्युटार्क का भी यही कथन है कि क्रोध समझदारी को घर से बाहर निकाल देता है और विवेकरूपी द्वार की चटखनी लगा देता है । संस्कृत में एक प्रसिद्ध पद्य है—

रागं दृशोर्वपुषि कम्पमनेकरूपं, चित्ते विवेकरहितानि च चिन्तितानि
पुंसाममार्गगमनं समदुःखजातं, कोपं करोति सहसामदिरामदश्च

गीता में लिखा है—क्रोध से अविवेक उत्पन्न होता है। अविवेक से स्मरण शक्ति भ्रमित हो जाती है। भ्रमित स्मृति से बुद्धि अर्थात् ज्ञान-शक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि के नाश हो जाने से पुरुष अपने श्रेय साधन से गिर जाता है^१।

इस प्रकार हम पाते हैं कि क्रोध से विवेक विकृत हो जाता है। फलतः आत्मा की शान्ति भंग हो जाती है। व्यक्ति अपने ऊपर काबू खो देता है। विचार की स्पष्टता नष्ट हो जाती है। परिस्थिति की पकड़ से वह रहित हो जाता है। आशय यही है कि क्रोध से हुई विवेकशून्यता अनेक दुर्गुणों की जननी है।

क्रोध स्वास्थ्य के लिए हानिकर :

मन और शरीर में घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। स्वस्थ-शरीर में स्वस्थ-मन रहता है। स्वस्थ-मन ही सम्यक् रूपेण विवेकयुक्त होता है। शारीरिक अस्वस्थता स्वस्थ-मन के लिए घातक है। दैहिक रोग शरीर की स्वस्थता में हानिकर है। मानसिक रोग मन की स्वस्थता में हानिकर है। मानसिक रोग अनेक हैं। क्रोध भी एक मानसिक रोग है। यह रोग बड़ा भयंकर होता है। शरीर और मन दोनों की स्वस्थता को यह ग्रस लेता है।

तुलसीदास ने क्रोध को पित्त कहा है। जो सदा छाती जलाता रहता है। उन्होंने कहा है, 'क्रोध पित्त निज छाती जारा।'^२ आज मनोवैज्ञानिकों ने भी क्रोध को मूक रोग माना है। उनकी मान्यता है कि क्रोध का दुष्प्रभाव मन और शरीर पर पड़ता है। क्रोध हमारी स्नायविक शक्ति को नष्ट करता है। इससे स्नायविक तनाव बढ़ता है। यह तनाव मानसिक और शारीरिक दृष्टि से घातक होता है। शरीर की ग्रन्थियों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे वे ग्रन्थियाँ, जो शरीर की रक्षा और वृद्धि के लिए उपयोगी होती हैं या अनुपयोगी तत्त्वों को शरीर से बाहर निकालती हैं, असन्तुलित एवं अनियन्त्रित हो जाती हैं। परिणामतः नाड़ियों में रक्त-प्रवाह तीव्र हो जाता है। इससे मस्तिष्क की शिराओं तथा धमनियों के फट जाने का भी भय रहता है। उच्च रक्तचाप (ब्लड-प्रेसर) का प्रकोप होने की सम्भावना रहती है। इससे हृदयातिपात (हार्ट-फेल्योर) जैसी खतरनाक बीमारियाँ भी हो सकती हैं।

१. गीता, २-६३.

२. रामचरित मानस, उत्तरकांड, दोहा १२१

क्रोध का मन, मस्तिष्क और शरीर की स्वस्थता पर कितना दुष्प्रभाव पड़ता है, इसके लिए मनोवैज्ञानिकों ने अनेक परीक्षण किये हैं, उनके निर्णय महत्त्वपूर्ण हैं। कतिपय प्रमुख मनोवैज्ञानिकों के निर्णय यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

अवसाद (डिप्रेशन) के अधिकांश रोगी अपने भीतर दमित क्रोध पाले रखते हैं। —एडलर

क्रोध से उत्पन्न होने वाले मस्तिष्क रोगों ने अनेकों को पागल बना दिया।... —डा० हेमन वर्ग

पेट में होने वाले पेप्टिक अल्सर का कारण दबा हुआ क्रोध ही है। क्रोध के कारण आमाशय की ग्रन्थियाँ तीव्र उत्तेजना में आकर अत्यधिक अम्ल रसों का स्राव करती हैं। जिससे आमाशय की दीवारों पर जमी पालिश उतर जाती है तथा घाव हो जाते हैं। इसी से अपच, गैस तथा उससे शरीर के सभी अंगों में दुःसह पीड़ाएँ घर कर जाती हैं। —श्री भानीराम अग्निमुख

साढ़े नौ घण्टे के शारीरिक श्रम से जितनी शक्ति क्षीण होती है, पन्द्रह मिनट के क्रोध से उतनी ही शक्ति क्षीण हो जाती है।

—डा० जे० एस्टर

क्रोध के कारण रक्त अशुद्ध हो जाता है। अशुद्धता के कारण चेहरा और सारा शरीर पीला पड़ जाता है। पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है। नसें खींचती हैं, तथा गर्मी और खुश्की का प्रकोप रहने लगता है। सिर का भारीपन, कमर में दर्द, पेशाब का पीलापन क्रोधजन्य उपद्रव है। —डा० अरोली

सबरे से शाम तक काम करके आदमी इतना नहीं थकता, जितना क्रोध या चिन्ता से एक घण्टे में थक जाता है। —एनन

इस प्रकार हम देखते हैं कि क्रोध भयंकर रोग है। यह मानसिक और शारीरिक शक्ति एवं सन्तुलन को नष्ट करता है। अतः मन और शरीर की स्वस्थता के लिए क्रोध त्याज्य है।

क्रोध असम्यक् मृत्यु का कारण :

जीना एक कला है। मरना भी एक कला है। मरण जीवन का उपसंहार है। यह अवश्यम्भावी है। कोई समाधिपूर्वक मृत्यु-वरण करता है तो कोई आकुल होकर मृत्यु से ग्रसित होता है। वस्तुतः

समाधिपूर्वक मरण में मानव मृत्यु पर विजय पा लेता है। मरना सभी को है। कोई मृत्यु को द्वार पर देखकर भयभीत होता है तो दूसरा उसका स्वागत करता है, उसे आमन्त्रित करता है। मृत्यु को आमन्त्रित करना भी दो प्रकार से होता है—१. ज्ञानपूर्वक मरण और २. आवेशपूर्वक मरण। शास्त्रीय शब्दों में इन्हें क्रमशः समाधिमरण और आत्म-हत्या कहा जाता है। किन्तु समाधिमरण अनाकुलता की अवस्था है तो आत्महत्या आवेश की।

समाधिमरण में समभाव या क्षमाशीलता अनिवार्य होती है, जबकि आत्म-हत्या में आवेश। आवेश क्रोध का अभिन्न अंग है। अतः क्रोध को आत्म-हत्या का प्रमुख कारण कहा जा सकता है। समाधिमरण में व्यक्ति क्रोधादि कषायों को कृश करते हुए शरीर को कृश करता है। परन्तु आत्म-हत्या क्रोध का ही फल है। एक में विवेक का प्रगटन होता है, दूसरे में उसका विनाश। समाधिमरण एक सामभाविक अवस्था है और आत्म-हत्या एक सांवेगिक अवस्था। आत्महत्या में मनुष्य जीवन के संघर्षों तथा तनावों से उत्पीड़ित होता है और अन्त में क्रोधावेश में वह स्वयं को मृत्यु-क्रोड़ में छिपा लेता है। समाधिमरणधारी निडर होकर मृत्यु को निमन्त्रण देता है, पूर्व उससे संवर्ष करता है। इस काल में उसे शारीरिक एवं मानसिक, अथवा आन्तरिक एवं बाह्य परीबह, उपसर्ग, कष्ट आदि सताते हैं, जिन्हें क्षमा के बल पर ही वह पराजित करता है। यह बात पूर्णतः निश्चित है कि मनुष्य आत्म-हत्या तभी करता है, जब वह क्रोध या आवेश का शिकार होता है। यह मरण एक प्रकार का जीवन-द्रोह है। इसमें निराशा है, भीरुता है, कायरता है। पाराशरस्मृति के अनुसार क्रोध के वशीभूत होकर आत्म-हत्या करने वाला साठ हजार वर्षों तक नरकावास करता है।^१

क्षमा का अमृत और क्रोध का विष :

अमृत अन्तर् में उपलब्ध है, किन्तु वह विष से आवृत्त है। विष के आवरण को हटाने पर ही अमृत का स्रोत प्रगट होता है। प्रश्न है, 'विष क्या है' ? उत्तर है, क्रोध ही विष है।^२ निर्विकार क्षमाशील जीवन अमृतमय है तो क्रोधादि विकारों से युक्त जीवन विषमय है। मानव को अमृत एवं विष दोनों उपलब्ध है। अमृत उसका

१. पाराशर स्मृति, ४.१.२

२. गौतम कुलक, ४

स्वभाव है तो विष उसका विभाव है, जो बाह्य कारणों से उत्पन्न होता है। क्षमा अमृत है, और क्रोध विष। जहाँ एक विकासक है, वहाँ दूसरा विपातक है, विनाशक है।

क्रोध आत्मघातक विकार है। क्रोध रूपी सर्प घृणा और विद्वेष रूपी विष से युक्त है। ऐसे विष का पान शिव जैसे देवता ही कर सकते हैं। जनसाधारण सामान्य सर्प को ही विषैला समझता है। किन्तु क्रोधी सर्प सामान्य सर्प से भी ज्यादा विषैला और खतरनाक होता है। सर्प विषैला होता है, परन्तु वह उसके लिए हानिकारक नहीं होता। वह तो जिसे काटता है, उसी के लिए घातक होता है। जबकि क्रोध रूप विष का प्रभाव स्वयं पर एवं दूसरे पर भी पड़ता है। अतः क्रोध से बढ़कर विष और कौन हो सकता है? कहा भी है—

क्रोधस्य कालकूटस्य, विद्यते महदन्तरम् ।

स्वाश्रयं दहति क्रोधः, कालकूटो न चाश्रयम् ॥^१

अतः क्रोध का विष अत्यधिक क्षतिकर होता है। उसकी मार बहुत दूर तक होती है। इसलिए क्रोध के उत्पन्न होते ही उसे समाप्त कर देना चाहिये। नहीं तो इसका परिणाम भयंकर आता है।

जैनधर्म में क्रोध की निन्दा :

जैन-आचार दर्शन में क्रोध को आध्यात्मिक एवं नैतिक दोनों दृष्टि से अनुचित माना गया है। जैन शास्त्रों में इसे कषाय^२ और आभ्यन्तर परिग्रह^३ कहा है। क्रोध की आलोचना करते हुए शंभुम्भव सूरि ने लिखा है कि क्रोध प्रीति का विनाशक है।^४ गौतमकुलककार ने क्रोध को अपकीर्ति और अस्थिर बुद्धि का मुख्य कारण बताया है। क्रोध एक विष है—यह उनका अटल विश्वास है। उनकी मान्यता है कि क्रोध से पराजित व्यक्ति सुख नहीं पाते।^५ देह रूपी घर में क्रोध के रहने से तीन विकार होते हैं—क्रोध स्वयं तपता है और दूसरों को पीड़ित करता है तथा धन का नुकसान करता है।^६ क्रोध विनय-विनाशक, पीड़ा-दायक, मित्रता का भेदक, उद्वेग का उत्पादक, कीर्ति-नाशक, दुर्गति-दायक और पुण्य को मार भगाने वाला है। अतः

१. उद्धृत, संस्कृत श्लोकसंग्रह, ५३.१

२. स्थानांग सूत्र, ४.४

३. भगवती आराधना; १११८

४. दशवैकालिक, ८.३८

५. श्री गौतम कुलकम्, ३, ४, ५

६. श्री कामघट कथानकम्, ८०

बुद्धिमान् पुरुषों को इसका परित्याग कर देना चाहिये।^१ निशीथ भाष्यकार की दृष्टि में ज्यों-ज्यों क्रोध की वृद्धि होती है, त्यों-त्यों चरित्र की सतत् हानि होती है।^२ देवर्द्धी गणि के मतानुसार उग्रक्रोध, जो पर्वत की दरार के समान जीवन में कभी नहीं मिटता है, वह आत्मा को नरक गति की ओर ले जाता है।^३ आचार्य शिवकोटि ने तो क्रोधी पुरुष को राक्षस की उपमा दी है। उन्होंने लिखा है कि क्रुद्ध मानव राक्षस के समान भयंकर हो जाते हैं।^४ उनका यह भी कथन है कि क्रोध से मानव का हृदय रौद्र बन जाता है। वह मानव होने पर भी नरक के जीव जैसा आचरण करने लग जाता है। आचार्य वसुनन्दि ने क्रोध को सामाजिक परिवेश में घातक कहा है। उनका कथन है कि क्रोध में अन्धा हुआ व्यक्ति निकट में खड़ी माता, बहिन और बच्चों को भी मारने लग जाता है।^५ इसी प्रकार आचार्य आनन्द ऋषि का कथन है कि क्रोध एक तूफान के समान आता है, जो विवेक की ज्योति को बुझा देता है। विवेक के अभाव में वह क्रोधी को तो जलाना ही है, साथ ही उसके कटुवचनों की चिनगारियाँ जिस किसी पर भी पड़ती हैं, वह भी जलने लगता है।^६

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि जैनधर्म में क्रोध को आन्तरिक एवं बाह्य जीवन में क्षतिकर बतलाया है। मनुष्य को न तो स्वयं पर क्रोध करना चाहिये और न ही दूसरों पर—यही जैनधर्म का उपदेश है। क्रोध पर विजय प्राप्त करनी चाहिये। क्रोध को जीत लेने से क्षमा-भाव जागृत होता है।^७

हिन्दू धर्म में क्रोध की निन्दा :

हिन्दू आचारदर्शन में क्रोध को बुरा समझते हुए उसे त्याज्य बताया गया है। अथर्ववेद में सूत्र है कि 'यदग्निरापो अदहत्'^८ अर्थात् क्रोध रूपी अग्नि जीवन-रस को जला देती है।

पुराणानुसार क्रोध शरीरस्थ दुष्ट शत्रुओं में से एक है।^९ वामन पुराण में क्रोध की विस्तृत चर्चा की गई है। उसमें लिखा है कि क्रोध अपरिमित मुखवाला प्राणनाशक शत्रु है। क्रोध बड़ी तेज धार का

१. कामघटकथानकम्, ७६ २. निशीथ भाष्य, २७६० ३. स्थानाङ्ग, ४।२

४. भगवती आराधना, १३६१

५. वसुनन्दि श्रावकाचार, ६७.

६. आनन्द-प्रवचन, भाग १, पृष्ठ ५३.

७. उत्तराध्ययन, २६. ६७.

८. अथर्ववेद, १.२५.१

९. उद्धृत—हिन्दी शब्दसागर, पृष्ठ १०६०

खड़ा है। क्रोध सब कुछ हर लेता है। मानव जो तप, संयम और दान आदि करता है, उस सबको वह क्रोध के कारण नष्ट कर डालता है। अतः क्रोध को त्यागना ही श्रेयस्कर है।^१ इसी ग्रन्थ में यह भी निर्दिष्ट है कि क्रोधी पुरुष जो कुछ पूजन करता है, प्रतिदिन जो दान करता है, जो तप करता है और जो हवन करता है, उसका उसे इस लोक में कोई फल नहीं मिलता। उस क्रोधी के सभी कार्य वृथा होते हैं।^२ विष्णुपुराण में भी इसी बात की पुष्टि करते हुए कहा गया है कि वत्स! मानव द्वारा बहुत क्लेश से संचित किया हुआ यश और तप को भी क्रोध सर्वथा विनष्ट कर डालता है।^३ अतः मूर्खों को ही क्रोध आता है, ज्ञानियों को नहीं।^४ क्रोध पर विजय प्राप्त करने में याज्ञवल्क्योपनिषत्कार का वक्तव्य सहायक है कि यदि तू अपकार करने वाले पर क्रोध करता है, तो क्रोध पर ही क्रोध क्यों नहीं करता, जो सबसे अधिक उपकार करने वाला है।^५ क्रोध से सब कार्य वैसे नहीं बनते जैसे शांति से।^६

गीता में क्रोध को आसुरी वृत्ति^७ एवं नरक का द्वार^८ कहा गया है, और यह बताया गया है कि क्रोध-मुक्त पुरुष कल्याण का आचरण करता है।^९ अपकार करने वाले पर भी क्रोध का न होना, गीता में दैवी सम्पदा को प्राप्त पुरुष का लक्षण बताया गया है।^{१०} गीता में क्रोध की कटु आलोचना भी की गयी है। उसमें लिखा है कि क्रोध से मूढ़ता पैदा होती है, मूढ़ता से स्मृति भ्रान्त हो जाती है, स्मृति भ्रान्त होने से बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि नष्ट हो जाने पर प्राणी

१. क्रोधः प्राणहरः शत्रुः क्रोधोमितमुखो रिपुः, क्रोधोऽसि सुमहातीक्ष्णः सर्वं क्रोधोऽनर्कषति । तप्तं यतते चैव यच्चदानं प्रयच्छति, क्रोधेन सर्वहरति तस्मात् क्रोधं विवर्जयेत् ॥—वामन पुराण
२. यत् क्रोधनो यजति यच्च ददाति नित्यं, यद्वा तहस्तपति यच्च जुहोति तस्य । प्राप्नोति नैवकिमपीह फलं हिलोके, सोऽयं फलं भवति तस्य हि कोपनस्य ॥—वही
३. सञ्चितस्यापि महतो वत्स क्लेशेन मानवैः । यशसस्तपसश्चैव क्रोधो नाराकरः परः ।—विष्णुपुराण
४. विष्णुपुराण, १.१.१७
५. याज्ञवल्क्योपनिषद्, २६
६. श्रीमद्भागवत, (८. ६. २४)
७. गीता, १६.२-३
८. वही, १६.२१
९. वही, १६. २२.
१०. गीता, २.६३

स्वयं नष्ट हो जाता है।^१ मानव क्रोध में पागल होकर गुरुजनों के प्रति अनर्गल प्रलाप कर देता है। वाल्मीकि रामायण में भी यही बात कही गई है कि क्रोध से उन्मत्त हुआ मनुष्य कौन-सा पाप नहीं कर डालता, वह अपने गुरुजनों की भी हत्या कर देता है।^२ क्रोधित मनुष्य नहीं जानता कि क्या कहने योग्य है और क्या कहने योग्य नहीं है। क्रोधी के लिए न कुछ अकार्य है और न कुछ अकथनीय ही है।^३ वे पुरुष धन्य हैं जो उत्पन्न हुए क्रोध को वैसे ही रोक लेते हैं जैसे पानी आग को।^४ वही पुरुष महात्मा कहलाता है, जो पैदा हुए क्रोध को क्षमा के द्वारा वैसे ही दूर कर देता है, जैसे सर्प कैंचुली को।^५

रामचरित मानस हिन्दू समाज में विश्रुत धार्मिक ग्रन्थ है। उसमें भी क्रोध की विविध प्रकार से निन्दा की गई है। इसमें क्रोध को प्रबल दुष्ट^६, पाप का मूल^७, धर्म का विनाशक^८, मोह-सेना का एक अंग,^९ नरक का पथ^{१०} आदि बताया गया है। क्रोध की आलोचना करते हुए तुलसीदास जी कहते हैं—

लखन कहेउ हंसि सुनहु मुनि क्रोध पाप कर मूल ।

जेहि बस जन अनुचित करहि चरहि विश्व प्रतिकूल ॥^{११}

लक्ष्मण ने मुस्करा कर परशुराम से कहा—मुनिजी ! क्रोध पाप की जड़ है। क्रोध के प्रभाव में मानव गलत काम कर बैठते हैं और विश्व में क्रोध से अनर्थ हो जाता है।

वैशेषिक दर्शन में क्रोध को द्वेष का एक भेद माना है और उसे द्रोह आदि की अपेक्षा शीघ्र नष्ट हो जानेवाला कहा है।^{१२}

इस प्रकार सम्पूर्ण भारतीय आचार-दर्शन में क्रोध को लौकिक एवं पारलौकिक दोनों दृष्टि से अनुचित माना गया है और इसका

- | | |
|----------------------------|--|
| १. गीता, शांकरभाष्य २.६३. | २. वाल्मीकि रामायण, सुन्दरकाण्ड, ५५.४. |
| ३. वही, सुन्दरकाण्ड, ५५.५. | ४. वही, सुन्दरकाण्ड, ५५.४. |
| ५. वही, सुन्दरकाण्ड, ५५.६. | ६. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, दोहा ३८ |
| ७. वही, बालकाण्ड, | ८. वही, किष्किंधाकांड, दोहा १५ |
| ९. अरण्यकांड, दोहा ४३. | १०. सुन्दरकाण्ड, दोहा ३८. |
| ११. वही, बालकाण्ड, | १२. हिन्दी शब्दसागर, पृष्ठ १०६० |

त्याग करना अनिवार्य बताया है ।

बौद्धधर्म में क्रोध की निन्दा :

बौद्ध-धर्म के प्रवर्तक भगवान् बुद्ध ने क्रोध को त्यागने का उपदेश दिया है । उन्होंने कहा है कि क्रोध न करें ।^१ क्रोध के वश न हों । जो क्रोध करता है, वह स्वयं अपना अहित करता है, परन्तु जो क्रोध का जवाब क्रोध से नहीं देता वह विजयी हो जाता है । प्रतिपक्षी को क्रोधांध्र देखकर जो अत्यन्त शान्त रहता है, वह अपना और पराया दोनों का ही हित-साधन करता है ।^२ बुद्ध का कथन है, जो चढ़े हुए क्रोध को चलते हुए रथ की तरह रोक लेता है, उसी को मैं सारथी कहता हूँ, दूसरे तो केवल लगाम पकड़ने वाले हैं ।^३ पुनः वे कहते हैं, क्रोध न करो । शत्रुता को भूल जाओ । अपने शत्रुओं को मैत्री से जीत लो । क्रोधाग्नि शान्त रहनी चाहिए । यही बुद्ध का अनुशासन है ।^४

बुद्ध ने क्रोधपर विजय प्राप्त करने के लिए अक्रोध का प्रतिपादन किया है । उन्होंने उद्घोषित किया है कि अक्रोध से क्रोध को जीतें ।^५ अक्रोधी को दुःख सन्ताप नहीं देते ।^६ अक्रोधी देवताओं के पास जाते हैं ।^७ संयुक्तनिकाय में एक ऐसा प्रसंग उपलब्ध होता है जो क्रोध का नाश करने की प्रेरणा देता है । उसमें लिखा है कि भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण ने बुद्ध से पूछा—किसका नाश कर मनुष्यसुख से सोता है ? किसका नाश कर शोक नहीं करता ? किस एक धर्म का, बध करना, हे गौतम ! आपको रुचता है ? भगवान् ने कहा—क्रोध का नाश कर सुख से सोता है, क्रोध का नाश कर शोक नहीं करता, विष के मूल स्वरूप क्रोध का, हे ब्राह्मण ! जो पहले बड़ा अच्छा लगता है । बध करना उत्तम पुरुषों से प्रशंसित है, उसी का नाश करके मनुष्य शोक नहीं करता ।^३

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि बौद्ध धर्म में क्रोध को अनु-

१. धम्मपद, १७.४.

२. बुद्धलीलासार संग्रह पृष्ठ ३०६

३. धम्मपद, १७.२.

४. उद्धृत-भगवान् बुद्ध और उनका धर्म (डा० आंबेडकर), पृष्ठ २८३.

५. धम्मपद १७.३.

६. वही, १७.१

७. वही, १७.४.

८. संयुक्त निकाय ७.१.१

चित्त धर्म माना है। और उससे दूर रहने के लिए प्रेरणा दी गई है।
क्रोध को निर्बल करने का उपाय—मौन:

मौन क्षमा की अभिव्यक्ति है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। अरबी कहावत है कि मौन के वृक्ष पर शान्ति के फल लगते हैं। सही है। क्रोध को मौन शान्त करता है। मौन से क्रोध का नाश होता है। यह क्रोध की अच्छी दवा है। मौन में क्रोध की अभिव्यक्ति नहीं होती। ऐसा व्यक्ति स्वयं शान्त रहता है, दूसरों को भी शान्त करने की क्षमता रखता है। मौनव्रती पर कोई क्रोध नहीं कर सकता। उबला हुआ दूध तभी उफनेगा जब उसको अग्नि का संयोग मिलेगा। ठंडे जल के आगे उसके उफनने की शक्ति समाप्त हो जाती है। मौनी के मुख की खिड़की बन्द होती है। जब कि कठोर वाणी ही क्रोध का पोषण करती है। इसलिए क्रोध को दुर्वचनों से विशेष प्रेम होता है। कारण, क्रोध को केवल कठोर वचनों का ही बल है। जब व्यक्ति वचन-बल से रिक्त होगा तो वह क्रोधवृत्ति से युक्त कैसे होगा? अतः हमारे अपने क्रोध को निर्मूल करने में मौन सहायक है। हाँ! मौनव्रती में परोक्ष रूप में क्रोध का उद्भव हो सकता है किन्तु वह क्रोध निरन्तर बना हुआ नहीं रहता है। वह पानी के बुलबुलों की तरह क्षणिक होता है। उसका हृदय पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है।

मौन पवित्रतम विचारों का मन्दिर है। इसके द्वारा इन्द्रियों पर नियन्त्रण हो जाता है। इससे व्यक्ति उपशमयुक्त बनता है। प्रसंग आने पर हमें मौन हो जाना चाहिए। क्रोध का द्वार बन्द कर देता है। 'रंगभूमि' में प्रेमचन्द ने लिखा है कि "क्रोध अत्यन्त कठोर होता है। वह देखना चाहता है कि मेरा एक वचन रूपी तीर निशाने पर बैठता है या नहीं! क्रोध की शक्ति अपार है, ऐसा कोई घातक शस्त्र नहीं है, जिससे बढ़कर काट करने वाले यन्त्र उसकी यन्त्रशाला में न हों। लेकिन मौन वह मन्त्र है, जिसके आगे उसकी सारी शक्ति विफल हो जाती है। मौन उसके लिए अजेय है।" सचमुच, 'मौनं सर्वार्थ-साधनम्'।¹

उपसंहार :

निष्कर्षतः हम देखते हैं कि क्षमा बहुआयामी और बहुप्रभावी तत्त्व है। क्रोध को उपशान्त कर क्षमा की साधना से व्यक्ति आध्यात्मिक और सामाजिक जीवन में विकास कर सकता है। वस्तुतः क्षमा आध्यात्मिक एवं सामाजिक दोनों ही क्षेत्रों के लिए आवश्यक है। आध्यात्मिक क्षेत्र में वह विद्वेष एवं तज्जनित आकुलता को समाप्त कर हमें स्व-स्वभाव में स्थित करती है तो सामाजिक जीवन में वह परस्पर सौहार्द्र और सौमनस्य की स्थापना करती है।

आज वैज्ञानिक साधनों के कारण विश्व की दूरियाँ सिमटती जा रही हैं। बाह्य रूप में मनुष्य एक दूसरे के बहुत निकट आ गया है। किन्तु दुर्भाग्य यही है कि हमारे हृदय की दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं। वास्तव में क्षमा ही एक ऐसा तत्त्व है जो हृदयों की इन दूरियों को समाप्त कर मनुष्य को एक-दूसरे के निकट ला सकता है। पर्युषण के पुनीत अवसर पर क्षमा की साधना का अर्थ यही है कि हमारी पारस्परिक दूरियाँ कम हों और हमारे सामाजिक जीवन में सौहार्द्र एवं सौमनस्य बढ़े। वस्तुतः जब क्षमा के स्वर मुखरित होंगे तभी शान्ति की वीणा बज सकेगी। क्षमा की साधना ही एक ऐसा उपाय है जो अन्तः और बाह्य—दोनों ही जीवन में शान्ति की स्थापना कर सकता है। काश, हम इस दिशा में आगे बढ़ें और मानव-समाज को जो आज अन्तः और बाह्य दोनों रूपों में अशान्त है, शान्ति का चिर-सौख्य प्रदान कर सकें।

श्री वीतरागाय नमः

क्षमा-प्रार्थना

संवत्सरी पत्रं, वीर संवत् २५१०

आत्म-शोधन के पावन-पत्र पर्युषण के पुनीत अवसर पर पाप-पङ्क का प्रक्षालन करने हेतु प्रमाद की परवशता में हुई भूलों/त्रुटियों के लिए हम हृदय से क्षमा-याचना करते हैं।

हमारे विगत व्यवहार से यदि आपकी मनोभावनाओं को कोई ठेस पहुँची हो और मनोमालिन्य का कोई अवसर उपस्थित हुआ हो तो क्षमा की निर्मल गङ्गा में उन पाप-कल्मषों का विसर्जन कर हम सभी आत्म-विशुद्धि के पावन पथ पर अग्रसर हों।

क्षमाप्रार्थी :

मुनि महिमाप्रभ सागर

मुनि ललितप्रभ सागर मुनि चन्द्रप्रभ सागर

सम्पर्क सूत्र :

१. श्री जैन श्वे. मन्दिर, के. २४/५ रामघाट, वाराणसी-२२०००१

२. पा. वि. शोध संस्थान, बी. एच. यू., वाराणसी-२२०००५